विषयानुक्रमणिका

मुनि श्री ने बड़े ध्यानपूर्वक कापियों का आद्योपान्त अवलोकन किया और संशोधन करने योग्य स्थलों की सूचना की । तदनुसार उनका संशोधन कर दिया गया ।

इस विषय में पं० मुनि श्री पन्नालाल जी म. सा. ने जो परिश्रम उठाया है उसके लिए हम मुनि श्री के अत्यन्त आभारी हैं। इसी प्रकार श्रावकवर्य श्रीमान् हीरालाल जी सा. मुकीम ने कई थोकड़े लिखवाने की कृपा की है एतदर्थ हम उनका भी आभार मानते हैं ।

चिरंजीव जेठमल सेठिया ने बड़ी लगन और रुचि के साथ परिश्रमपूर्वक इन थोकड़ों का संग्रह किया है । आशा है धार्मिक ज्ञान के प्रति उनकी जो लगन और रुचि है वह उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती रहे जिससे समाज को ज्ञान का अधिकाधिक लाभ मिलता रहे ।

आजकल थोकड़े सीखने की रुचि कम होती जा रही है और पन्नवणा सूत्र के सब थोकड़े एक पुस्तक में छपे हुए नहीं मिलते हैं । इसीलिए हमने इस सूत्र के सब पदों के थोकड़ों को छपवाने का निश्चय किया है जिनके प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय भाग प्रकाशित किये जा रहे हैं । आशा है जैन समाज इन थोकड़ों में संग्रहीत ज्ञान से लाभान्वित होंगे ।

बीकानेर
वि० सं० २००८
ज्ञान पंचमी

निवेदक
भैरोंदान सेठिया

हुई और नवीन ज्ञान भी प्राप्त हुआ । इसके लिए मैं उनका आभारी हूं ।

श्री जेठमल जी सा० का यह प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय है । मैं आशा करता हूं कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार का उद्योग करते हुए बोल थोकड़ों की प्रणाली को आगे की पीढ़ी के लिए चालू रखेंगे । यही शुभ कामना करता हूं ।

हीरालाल मुकीम
बीकानेर

द्वितीयावृत्ति के सम्बन्ध में

संस्था की ओर से श्री पन्नवणा (प्रज्ञापना) सूत्र के थोकड़ों के तीन भाग मारवाड़ी भाषा में प्रकाशित हुए थे। प्रथमावृत्ति समाप्त हो जाने पर अधिक मांग होने से द्वितीय संस्करण की आवश्यकता प्रतीत हुई। पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों के भागों पर हमें जो सम्मतियां प्राप्त हुईं, उनमें कतिपय महानुभावों ने यह सूचना दी थी कि ये थोकड़े मारवाड़ी भाषा में न होकर राष्ट्र भाषा हिन्दी में होते तो सभी प्रान्त वाले इनसे समान रूप से लाभ उठा सकते थे। अतः पण्डित घेवरचन्दजी बांठिया से श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों के तीनों भागों का अनुवाद एवं सम्पादन कराया गया।

इस संस्करण में विषय को अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है अतः पुस्तक का कलेवर काफी बढ़ गया है। कागज, छपाई एवं अन्य व्यय बढ़ जाने पर भी सर्व साधारण के हाथों में पहुंच सके, इसी दृष्टि से इसका मूल्य एक रुपया ही रखा गया है।

श्री पन्नवणा सूत्र का विषय अति गहन एवं दुरूह है। इस भाग में शास्त्रीय विषय को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने का हमने प्रयास किया है फिर भी विषय विवेचन में त्रुटि भी हो सकती है क्योंकि प्रस्तुत संस्करण की पाण्डुलिपि जैनागम रहस्यवेत्ता शास्त्रमर्मज्ञ पं० रत्न [illegible] मुनि श्री [illegible] जी म० सा० को न दिखा सके, जिनका कुछ समय पूर्व स्वर्गवास हो गया था। अतः सुज्ञ पाठकों से हमारी प्रार्थना

है कि यदि वे इस भाग में तत्त्व सम्बन्धी त्रुटि या अन्य किसी प्रकार की कमी अनुभव करें तो हमें सूचित करने का कष्ट करें ताकि आगामी संस्करण में सुधार किया जा सके। पाठकों की इस कृपा के लिए हम उनके आभारी होंगे।

प्रूफ संशोधन में पूर्ण सावधानी रखते हुए भी खेद है कि इसमें अशुद्धियां रह गई हैं जिनमें से अधिकांश शुद्धिपत्र में शुद्ध करदी गई है। बहुत जगह अनुस्वार साफ नहीं उठा है या बिल्कुल ही नहीं उठा है जैसे-- संख्यात, असंख्यात, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, असज्ञी, अंगोपांग, भंग, दण्डक, संयोगी, अंगुल, कंचुक, संग्रह, अंगुष्ठ, आरंभिकी, अंगीकार, पडित, क्रियाएं, भंडारी, अणवकखवतिया, हैं आदि। अनेक स्थानों पर रेफ साफ नहीं उठा है या बिलकुल ही नहीं उठा है जैसे- कार्मण, कर्म, पर्यंत, वर्णन, दर्शन, अनर्थ-दण्ड, आर्तध्यान, स्वार्थ, वर्ष, प्रदर्शन, पूर्व, स्पर्श आदि। इनके अतिरिक्त कहीं कहीं मात्राएं, रेफ, अनुस्वार और अक्षर टाइप घिसे या टूटे होने से छपाई में साफ नहीं उठे हैं जैसे ा, ि, ी, े, ो, ँ तथा प, ज, क, घ, स, ष, त, र, व, य, भ, द, न, स, प आदि। किन्तु पूर्वापर सम्बन्ध के साथ पढ़ने से इनमें भूल होने की सम्भावना नहीं है।

बीकानेर
वि० सं० २०२८
श्रावण शुक्ला ३

निवेदक
जेठमल सेठिया

शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, उससे औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी, उससे वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी, उससे तैजस कार्मण शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यातगुणी, परस्पर तुल्य ।

(१२) प्रयोजनद्वार — औदारिक शरीर का प्रयोजन— तीर्थंकर गणधर के शरीर की अपेक्षा औदारिक शरीर प्रधान कहा गया है । तीर्थंकर गणधर के शरीर की अपेक्षा दूसरे शरीर अनन्तगुण हीन होते हैं । इस औदारिक शरीर से तीर्थंकर गणधर एवं अन्य चरमशरीरी आठ कर्म क्षय कर सिद्धिगति प्राप्त करते हैं । वैक्रिय शरीर का प्रयोजन अच्छे-बुरे अनेक प्रकार के रूप बनाना है । विशिष्ट पदार्थ के बोध, सशय-निवारण आदि प्रयोजन से विशिष्ट आहारक लब्धिधारी चौदह पूर्वधर केवली भगवान के पास भेजने के लिये आहारक शरीर बनाते हैं जो एक हाथ प्रमाण होता है । केवली भगवान के पास भेजा हुआ आहारक शरीर जहां केवली भगवान् विराजते हैं वहां जाता है । यदि केवली भगवान् वहां से विहार कर गये हों तो आहारक शरीर में से उससे कुछ छोटा यानी मुंड हाथ प्रमाण शरीर निकलता है वह जहां केवली भगवान् पधारे हैं वहां जाता है । केवली भगवान् के समीप प्रयोजन सिद्ध कर वह छोटा शरीर लौट कर मूल एक हाथवाले आहारक शरीर में प्रवेश करता है—मूल आहारक शरीर आकर मुनिराज के शरीर में प्रवेश करता है । मुनि-

राज ने जिस प्रयोजन से आहारक शरीर बना केवली भगवान् के पास भेजा था उनका वह प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। प्रश्नकर्त्ता सामने हो तो मुनिराज उसका समाधान करते हैं। तैजस शरीर का प्रयोजन आहार पचाना है। तैजस लब्धि का प्रयोग भी तैजस शरीर द्वारा हो होता है। कार्मण शरीर आठ कर्मों का खजाना रूप है। यह शरीर जीव को चारों गतियों में भ्रमण कराता है। यह शरीर आहार को क्रमशः यथास्थान पहुंचाता है।

(१३) विषयद्वार— औदारिक शरीर का विषयरुचक द्वीप तक, वैक्रिय शरीर का विषय असंख्यात द्वीप समुद्र तक, आहारक शरीर का विषय ढाई द्वीप तक, तथा तैजस कार्मण शरीर का विषय (केवली समुद्घात की अपेक्षा) चौदह राजू लोक प्रमाण है।

(१४) स्थितिद्वार— औदारिक शरीर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की (युगलिया की अपेक्षा)। वैक्रिय शरीर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की। आहारक शरीर की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। तैजस कार्मण शरीर की स्थिति के दो भंग होते हैं–अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित (अनादि सान्त)।

(१५) अन्तरद्वार—औदारिक शरीर का अन्तर जघन्य

अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम का। वैक्रिय शरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनन्तकाल का। आहारक शरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन का। तैजस कार्मण शरीर का अन्तर नहीं होता- ये दोनों शरीर ससारी जीव के सदा रहते हैं,

---

मारणान्तिक समुद्घात का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र २१ वां पद)

मारणान्तिक समुद्घात में तैजस शरीर की कितनी अवगाहना होती है यह इस थोकड़े में बताया जायगा। मारणान्तिक समुद्घात में तैजस शरीर का विष्कभ (विस्तार) और बाहुल्य (स्थूलता) शरीर प्रमाण रहता है। तैजस शरीर का आयाम (लम्बाई) जीवों में पृथक्-पृथक् है जो इस प्रकार है:—

(१) नैरयिक मारणान्तिक समुद्घात करे तो जघन्य एक हजार योजन से कुछ अधिक उत्कृष्ट नीचे सातवीं नरक× तक, तिर्छे स्वयंभूरमण समुद्र तक और ऊपर मेरु पर्वत के पंडग वन की बावड़ियों तक।

× नैरयिक नीचे समुद्घात नहीं करता है किन्तु सातवीं नारकी का नैरयिक अपने स्थान में समुद्घात करता है इस अपेक्षा से नीचे की समुद्घात कही है।

(२) भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के देवता मारणान्तिक समुद्घात करें तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट नीचे तीसरी नारकी* के चरमान्त तक, तिर्छे स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका (पद्मवर वेदिका) के चरमान्त तक और ऊपर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धशिला) तक ।

(३) तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक के देवता मारणान्तिक समुद्घात करे तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट नीचे करे तो पाताल कलशों के दूसरे त्रिभाग [⅓] तक, तिर्छे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त, ऊपर बारहवें देवलोक× तक ।

(४) नवें दसवें ग्यारहवें और बारहवें देवलोक के देवता मारणान्तिक समुद्घात करे तो जघन्य अंगुल के असं-

---

* भवनपति से दूसरे देवलोक के देवता कारणवश तीसरी नारकी के चरमान्त तक जावे और वहां काल कर जाय इस अपेक्षा से इन देवों की नीचे की समुद्घात कही है ।

× तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक के देवता ऊपर समुद्घात नहीं करते । किन्तु यदि कोई दूसरा ऊपर का देवता उन्हें ऊपर के देवलोक यावत् बारहवें देवलोक तक ले जावे और वहीं उस देवता की आयु पूरी हो जाय – इस अपेक्षा से इनकी ऊपर की समुद्घात कही है ।

स्यातवें भाग उत्कृष्ट नीचे अधोलोक के ग्राम [सलिलावती विजय] तक, तिर्छे मनुष्य क्षेत्र [ढ़ाई द्वीप] तक तथा ऊपर बारहवें × देवलोक तक किन्तु बारहवें देवलोक के देवता के लिये ऊपर अपने विमान तक कहना ।

(५) नवग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान के देवता मारणान्तिक समुद्घात करे तो जघन्य विद्याधरों की श्रेणी तक उत्कृष्ट नीचे अधोलोक के ग्राम सलिलावती विजय तक, तिर्छे मनुष्य क्षेत्र तक और ऊपर अपने अपने विमान + तक ।

(६) पांच स्थावर मारणान्तिक समुद्घात करें तो जघन्य अंगुल के असख्यातवें भाग उत्कृष्ट लोकान्त से लोकान्त तक अर्थात् ऊपर करे तो चौदह राजू तक, नीचे करे तो चौदह राजू तक और तिर्छे करे तो एक राजू तक ।

(७) तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय मारणान्तिक समुद्घात करे तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट तिर्यक् लोक से लोकान्त तक अर्थात् नीचे सात राजू ऊपर सात राजू और तिर्छे एक राजू तक ।

× नवें से ग्यारहवें देवलोक के देवता कारणवश ऊपर बारहवें देवलोक तक जावें और वहीं काल कर जाय — इस अपेक्षा से इनकी ऊपर की समुद्घात बारहवें देवलोक तक कही है ।

+ नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान के देवता जहां रहते हैं वहीं काल करते हैं इस अपेक्षा से मारणान्तिक समुद्घात अपने-अपने विमान तक कही है ।

(८) मनुष्य मारणान्तिक समुद्घात करे तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट समयक्षेत्र [मनुष्यक्षेत्र] से लोकान्त तक अर्थात् तिर्छे आधे राजू तक, ऊपर सात राजू से कुछ कम और नीचे सात राजू से कुछ अधिक ।

क्रिया पद

[पन्नवणा सूत्र २२ वां पद]

(१) नामद्वार— कर्मबन्ध की कारणभूत ---- ... क्रिया कहते हैं । क्रिया के पांच भेद हैं – कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया ।

(२) अर्थ और भेदद्वार— कायिकी [काइया] क्रिया— काया अर्थात् शरीर में अथवा शरीर से होने वाली क्रिया कायिकी क्रिया कहलाती है । कायिकी क्रिया के दो भेद – अनुपरत कायिकी [अणुवरयकाइया] और दुष्प्रयुक्त कायिकी [दुप्पउत्तकाइया] । देश अथवा सर्वप्रकार से जो सावद्य योग से विरत नहीं है ऐसे चौथे गुणस्थान तक के जीव को अव्रत से लगने वाली क्रिया अनुपरत कायिकी क्रिया है । योगों के दुष्ट प्रयोग से लगने वाली क्रिया दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया है । यह क्रिया छठे गुणस्थान तक होती है । आविक-

रणिकी [अहिगरणिया] क्रिया - अनुष्ठान विशेष को अथवा वाह्य शस्त्रादि को अधिकरण कहते है । अधिकरण में अथवा अधिकरण से होने वाली क्रिया को आधिकरणिकी क्रिया कहते हैं । आधिकरणिकी क्रिया के दो भेद– सयोजनाधिकरणिकी [संजोयणा] और निर्वतनाधिकरणिकी [निवर्तना] । पहले वने हुए शस्त्रादि के पृथक् पृथक् अगों को जोड़ना संयोजनाधिकरणिकी क्रिया है । नये शस्त्रादि वनाना निर्वतनाधिकरणिकी क्रिया है । पांच प्रकार का शरीर वनाना भी आधिकरणिकी क्रिया है क्योंकि दुष्प्रयुक्त शरीर भी ससार वृद्धि का कारण है । प्राद्वेषिकी [पाउसिया] क्रिया-मत्सरभाव जीव के अकुशल परिणाम विशेष को प्रद्वेष कहते हैं । प्रद्वेप में अथवा प्रद्वेप से होनेवाली क्रिया प्राद्वेपिकी क्रिया कहलाती है। स्व, पर और उभय के भेद से प्राद्वेपिकी क्रिया तीन प्रकार की है। स्व प्राद्वेपिकी—अपनी आत्मा पर प्रद्वेप करना, अकुशल परिणाम रखना । पर प्राद्वेपिकी-दूसरे पर प्रद्वेप करना । उभय प्राद्वेपिकी—अपनी आत्मा पर तथा दूसरे पर प्रद्वेप करना । पारितापिनीकी [परितावणिया] क्रिया— परिताप का अर्थ कष्ट देना है । परिताप में अथवा परिताप से होने वाली क्रिया पारितापनिकी क्रिया है। पारितापनिकी क्रिया भी स्व, पर और उभय के भेद से तीन प्रकार की है । जैसे—अपनी आत्मा को कष्ट देना, दूसरे को कष्ट देना और स्व और पर दोनों को कष्ट देना । इन्द्रिय

आदि प्राण हैं उनका नाश करना अर्थात् प्राणी की घात करना प्राणातिपात [पाणाइवाइया] है । प्राणातिपात से लगने वाली क्रिया प्राणातिपात क्रिया है। अपनी घात करना, दूसरे की घात करना और स्व तथा पर दोनों की घात करना इस तरह प्राणातिपात क्रिया भी स्व, पर और उभय के भेद से तीन प्रकार की है ।

(३) सक्रिय अक्रिय द्वार— हे भगवन् ! जीव सक्रिय है या अक्रिय है ? हे गौतम ! जीव सक्रिय भी है और अक्रिय भी है। जीव के दो भेद – संसारी और सिद्ध । सिद्ध अक्रिय हैं। संसारी जीव के दो भेद – शैलेशी प्रतिपन्न और अशैलेशी प्रतिपन्न। शैलेशी का अर्थ अयोगी अवस्था अर्थात् चौदहवां गुणस्थान है। शैलेशी अवस्था में जीव योगों का निरोध करते हैं इस कारण वे अक्रिय हैं । अशैलेशी प्रतिपन्न जीव सयोगी होते हैं अतः वे सक्रिय हैं।

(४) 'क्रिया किससे लगती है ?' द्वार–जीव को प्राणातिपात क्रिया छह जीव निकाय से लगती है । समुच्चय जीव की तरह चौवीस दंडक कहना । जीव को मृषावाद की क्रिया सभी द्रव्यों से लगती है । इसी तरह चौवीस दंडक कहना। जीव को अदत्तादानक्रिया ग्रहण धारण योग्य द्रव्यों से लगती है। इसी तरह चौवीस दंडक कहना । जीव को मैथुन क्रिया रूप एवं रूप वाले द्रव्यों से लगती है। इसी तरह चौवीस दंडक कहना। जीव को परिग्रह की क्रिया सभी द्रव्यों से लगती है।

इसी तरह चौवीस दंडक कहना । परिग्रह क्रिया की तरह क्रोधादि यावत् मिथ्या दर्शन शल्य की क्रिया भी समुच्चय जीव और चौवीस दंडक को सभी द्रव्यों से लगती है । इस तरह प्राणातिपात, अदत्तादान और मैथुन देश द्रव्य वाले हैं और शेष पन्द्रह पापस्थान सर्व द्रव्य वाले यानी सभी द्रव्यों से लगते हैं। १८×२५=४५० भग एक जीव की अपेक्षा और ४५० भंग बहुत जीवों की अपेक्षा कुल ४५०+४५०=९०० भंग हुए।

(५) 'क्रिया करते हुए कितने कर्म बंधते हैं ?' द्वार– एक जीव प्राणातिपात क्रिया करते हुए कभी सात कभी आठ कर्म बांधता है। इसी तरह चौवीस दडक एक वचन की अपेक्षा कहना। प्राणातिपात की तरह शेष १७ पापस्थान कहना। बहुत जीव की अपेक्षा १९ दडक (पांच स्थावर वर्ज कर) में तीन भग पाते हैं – १ सभी सात कर्म बांधते है, २ सात कर्म बांधने वाले बहुत और आठ कर्म बांधने वाला एक, ३ सात कर्म बांधने वाले बहुत और आठ कर्म बांधने वाले बहुत । इस तरह १९×३=५७ भग हुए और १८ पापस्थान से ५७×१८ =१०२६ भंग हुए । पांच स्थावर के बहुत जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य क्रिया करते हुए सात कर्म भी बांधते हैं और आठ कर्म भी बांधते हैं। अभंग यानी भग बनता नहीं।

(६) 'कर्म बांधते हुए कितनी क्रिया लगती है?' द्वार– एक जीव को ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाए लगती है । समुच्चय जीव की

तरह चौवीस दंडक एक की अपेक्षा कहना । बहुत जीव ज्ञाना-वरणीय कर्म बांधते हुए तीन क्रिया वाले, चार क्रिया वाले और पांच क्रिया वाले भी होते हैं । इसी तरह चौवीस दंडक बहुवचन से कहना। एकवचन की अपेक्षा २५ भंग और बहुवचन की अपेक्षा २५ भंग यानी ५० भंग ज्ञानावरणीय कर्म के हुए। इसी तरह शेष सात कर्म कह देना । ५०×८=४०० भंग हुए ।

(७) 'जीव को जीव से कितनी क्रिया लगती है?' द्वार– समुच्चय एक जीव को समुच्चय एक जीव की अपेक्षा कभी (सिय) तीन क्रिया, कभी चार क्रिया, कभी पांच क्रिया लगती है और कभी अक्रिय होता है अर्थात् कोई क्रिया नहीं लगती । ये क्रियाएं वर्तमान तथा भव की अपेक्षा समझनी चाहिये । समुच्चय एक जीव को औदारिक के दस दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार, कभी पांच क्रियाए लगती हैं और कभी क्रिया रहित होता है । समुच्चय एक जीव को नारकी देवता के चौदह दंडक की अपेक्षा कभी तीन और कभी चार क्रियाएं लगती हैं और कभी क्रिया नहीं लगती। नारकी और देवता के चौदह दंडक वाले जीव को नारकी देवता के चौदह दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार क्रियाएं लगती हैं । नारकी देवता के चौदह दंडक के जीव को समुच्चय जीव और औदारिक के दस दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं ।

मनुष्य के सिवाय श्रौदारिक के नौ दंडक के जीव को नारकी देवता के चौदह दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार क्रियाए लगती हैं तथा समुच्चय जीव और श्रौदारिक के दस दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। मनुष्य समुच्चय जीव की तरह कहना। इसी तरह एक जीव को बहुत जीवों की अपेक्षा कहना तथा बहुत जीवों को एक जीव और बहुत जीवों की अपेक्षा कहना। किन्तु इतना अन्तर है कि "बहुत जीवों को बहुत जीव की अपेक्षा 'इस चौथे अलावे में 'कभी (सिय)' नहीं बोलना किन्तु तीन क्रिया भी लगती हैं, चार क्रिया भी लगती हैं और पांच क्रिया भी लगती हैं इस प्रकार कहना तथा समुच्चय और मनुष्य में अक्रिय भी कहना। समुच्चय जीव और चोबीस दंडक के प्रत्येक के चार भंग होने से २५×४=१०० भंग हुए। समुच्चय और चोबीस दंडक की अपेक्षा १००×२५= २५०० भंग हुए।

(८) 'जीव को पांच क्रियाएं लगती हैं' द्वार- पांच क्रिया के नाम- कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया। समुच्चय जीव और चोबीस दंडक में पांच क्रियाएं पाती हैं २५×५=१२५ भंग हुए। क्रिया का नियमा और भजना द्वार- (१) जिसे कायिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक आधिकरणिकी क्रिया लगती है और जिसे आधिकरणिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक

कायिकी क्रिया लगती है । (२) जिसे कायिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है और जिसे प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक कायिकी क्रिया लगती है । (३) कायिकी क्रिया में पारितापनिकी क्रिया की भजना है अर्थात् जिसे कायिकी क्रियां लगती है उसे पारितापनिकी क्रिया लगती भी है और नहीं भी लगती । जिसे पारितापनिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक कायिकी क्रिया लगती है । (४) कायिकी क्रिया में प्राणातिपात क्रिया की भजना है, प्राणातिपात क्रिया वाले को कायिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है । (५) जिसे आधिकरणिकी क्रिया लगती है उसे प्राद्वेषिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है और जिसे प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है उसे आधिकरणिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है । (६) आधिकरणिकी क्रिया वाले में पारितापनिकी क्रिया की भजना है और पारितापनिकी क्रिया वाले को आधिकरणिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है । (७) आधिकरणिकी क्रिया वाले में प्राणातिपात क्रिया की भजना है और प्राणातिपात क्रिया वाले को आधिकरणिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है । (८) प्राद्वेषिकी क्रिया वाले में पारितापनिकी क्रिया की भजना है और पारितापनिकी क्रिया वाले को प्राद्वेषिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है । (९) प्राद्वेषिकी क्रिया वाले में प्राणातिपात क्रिया की भजना है और प्राणातिपात क्रिया वाले को प्राद्वेषिकी क्रिया

नियमपूर्वक लगती है। (१०) पारितापनिकी क्रिया वाले में प्राणातिपात क्रिया की भजना है और प्राणातिपात क्रिया वाले को पारितापनिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है।

इसी तरह जिस समय, जिस देश और जिस प्रदेश की अपेक्षा भी कहना। जैसे– जिस समय कायिकी क्रिया की जाती है उस समय आधिकरणिकी क्रिया नियमपूर्वक की जाती है और जिस समय आधिकरणिकी क्रिया की जाती है उस समय कायिकी क्रिया नियमपूर्वक की जाती है। इसी तरह जिस देश में कायिकी क्रिया की जाती है उस देश में नियमपूर्वक आधिकरणिकी क्रिया की जाती है और जिस देश में आधिकरणिकी क्रिया की जाती है उस देश में नियमपूर्वक कायिकी क्रिया की जाती है। जिस प्रदेश में कायिकी क्रिया की जाती है उस प्रदेश में नियमपूर्वक आधिकरणिकी क्रिया की जाती है और जिस प्रदेश में आधिकरणिकी क्रिया की जाती है उस प्रदेश में नियमपूर्वक कायिकी क्रिया की जाती है। इस तरह नियमा और भजना द्वार में कहे अनुसार समय, देश और प्रदेश की अपेक्षा दस दस भंग कहना। इस तरह १० भंग समुच्चय के, १० भंग समय के, १० भंग देश के और दस भंग प्रदेश के कुल ४० भंग हुए। समुच्चय जीव और २४ दंडक इन २५ से गुणा करने से २५×४०=१००० भंग हुए।

(१) आयोजिका (आओजिया) क्रिया— जो क्रिया

जीव को संसार के साथ जोड़ती है उसे आयोजिका क्रिया कहते हैं । आयोजिका क्रिया के कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया – ये पांच भेद हैं। आयोजिका क्रिया के भी ८वें द्वार में कहे अनुसार १००० भंग कहना ।

स्पृष्ट द्वार—जीव जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी इन तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय क्या पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया से भी स्पृष्ट होता है ? उत्तर से चार भंग बताते हैं – (१) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया से भी स्पृष्ट होता है । (२) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है और प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट नहीं होता । (३) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट नहीं होता । (४) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट नहीं होता उस समय पारितापनिकी और प्रणातिपात क्रिया से भी स्पृष्ट नहीं होता ।

(१०) क्रिया के पांच भेद—आरंभिकी [आरंभिया], पारिग्रहिकी [परिग्गहिया], माया प्रत्यया [माया वत्तिया],

अप्रत्याख्यान क्रिया [अपच्चक्खाण किरिया] और मिथ्यादर्शन प्रत्यया [मिच्छादसण वत्तिया] । आरंभिकी क्रिया प्रमत्त संयत [छठे गुणस्थान वाले] को तथा नीचे के [पहले से से पांचवें] गुणस्थानों में रहे हुए जीवों को लगती है । पारिग्रहिकी क्रिया संयतासंयत यानी पांचवें गुणस्थान वाले को तथा नीचे के गुणस्थान वालों को लगती है । माया प्रत्यया क्रिया अप्रमत्त संयत [सातवें से दसवें गुणस्थान वाले को] तथा नीचे के गुणस्थान वालो को लगती है । अप्रत्याख्यान क्रिया प्रत्याख्यान न करने वाले को यानी अविरतसम्यग्दृष्टि – चौथे गुणस्थान वाले को तथा नीचे के गुणस्थान वालों को लगती है । मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया मिथ्यादृष्टि को तथा मिश्र गुणस्थान वाले को लगती है ।

पावणद्वार— समुच्चय जीव और चोवीस दंडक में पांच क्रियाएं पाई जाती हैं ।

नियमा भजनाद्वार— (१) आरंभिकी क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया की भजना है, पारिग्रहिकी क्रिया में आरंभिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (२) आरंभिकी क्रिया में माया प्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होता है, माया प्रत्यया क्रिया में आरंभिकी क्रिया की भजना है । (३) आरंभिकी क्रिया में अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है, अप्रत्याख्यान क्रिया में आरंभिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (४) आरंभिकी क्रिया में मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शनप्रत्यया

क्रिया में आरंभिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (५) पारिग्राहिकी क्रिया में माया प्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होती है, माया प्रत्यया क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया की भजना है। (६) पारिग्रहिकी क्रिया में अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है, अप्रत्याख्यान क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (७) पारिग्रहिकी क्रिया में मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (८) माया प्रत्यया क्रिया मे अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है, अप्रत्याख्यान क्रिया में माया प्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होती है। (९) माया प्रत्यया क्रिया में मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया में माया प्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होती है। (१०) अप्रत्याख्यान क्रिया में मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया में अप्रत्याख्यान क्रिया नियमपूर्वक होती है।

नारकी और देवता के चौदह दंडक में चार क्रिया नियमपूर्वक होती है, मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया होने पर पांच क्रिया नियमपूर्वक होती है। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में पांच क्रिया नियमपूर्वक होती है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय मे तीन क्रिया नियमपूर्वक होती है, अप्रत्याख्यान क्रिया होवे तो चार-क्रियाएं नियमपूर्वक होती है, मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया होने पर पांच

[४] सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक।

[५] सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत।

[६] सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्धक एक।

[७] सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्धक बहुत।

तीन संयोगी बारह भंग

[८] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म का बंधक एक।

[९] सात कर्म और एक कर्म के बंधक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म के बंधक बहुत।

[१०] सात कर्म और एक कर्म के बंधक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक।

[११] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत।

[१२] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, अबन्धक एक।

[१३] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, अबन्धक बहुत।

[१४] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक एक।

[१५] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक बहुत।

[१६] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक एक।

[१७] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक बहुत।

[१८] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक एक।

[१९] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक बहुत।

चार संयोगी आठ भंग

[२०] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक एक।

[२१] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक बहुत।

[२२] सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक एक।

[२३] सात कर्म और एक कर्म के वन्धक वहुत, आठ कर्म का वन्धक एक, छह कर्म के बंधक वहुत, अवन्धक वहुत।

[२४] सात कर्म और एक कर्म के वन्धक वहुत, आठ कर्म के वन्धक वहुत, छह कर्म का बन्धक एक, अवन्धक एक।

[२५] सात कर्म और एक कर्म के वन्धक वहुत, आठ कर्म के वन्धक वहुत, छह कर्म का वन्धक एक, अवन्धक वहुत।

[२६] सात कर्म और एक कर्म के वन्धक वहुत, आठ कर्म के वन्धक वहुत, छह कर्म के वन्धक वहुत, अवन्धक एक।

[२७] सात कर्म और एक कर्म के वन्धक वहुत, आठ कर्म के वन्धक वहुत, छह कर्म के वन्धक वहुत, अवन्धक वहुत।

समुच्चय जीव की तरह मनुष्य के २७ भंग कहना। समुच्चय जीव और मनुष्य के २७ सत्ताईस भांगे २७+२७ =५४ भंग हुए। अठारह पाप से कहने से ५४×१८=९७२ भंग हुए।

नारकी, देवता और तिर्यंच पंचेन्द्रिय इन पन्द्रह दंडक के वहुत से जीव मिथ्यात्व से निवृत्त होते हुए सात कर्म बांधते हैं, और आठ कर्म बांधते हैं। इनके तीन भंग होते

हैं— (१) सभी सात कर्म के बन्धक, (२) सात कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, (३) सात कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत । १५×३=४५ भंग हुए । कुल ९७२+४५=१०१७ भंग हुए ।

(१३) "प्राणातिपात आदि अठारह पाप से निवृत्त होने वाले को कितनी क्रिया लगती है ?" द्वार—प्राणातिपात से निवृत्त होने वाले समुच्चय जीव में दो क्रिया— आरम्भिकी और माया प्रत्यया की भजना, पारिग्रहिकी, अप्रत्याख्यान क्रिया और मिथ्यादर्शन प्रत्यया — ये तीन क्रिया उसके नहीं लगती । इसी तरह मिथ्यात्व के सिवाय शेष १७ पाप स्थान से निवृत्त होने वाले जीव के लिये कहना, मिथ्यात्व से निवृत्त होने वाले जीव के मिथ्यात्व क्रिया नहीं लगती, शेष चार क्रिया की भजना । समुच्चय जीव की तरह मनुष्य कहना । शेष २३ दंडक के जीव १८ पाप से निवृत्त नहीं होते । इतना विशेष जानना कि मिथ्यात्व से निवृत्त होने वाले नारकी व देवता के १४ दंडक के जीव के मिथ्यात्व की क्रिया नहीं लगती, शेष चार क्रियाएं लगती हैं । मिथ्यात्व से निवृत्त होने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय के मिथ्यात्व की क्रिया नहीं लगती, अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है और शेष तीन क्रियाएं लगती हैं । समुच्चय जीव और चौबीस दंडक को १८ पाप से गुणा करने से २५×१८=४५० भंग होते हैं ।

(१४) अल्प बहुत्वद्वार—(१) सबसे थोड़े मिथ्यात्व

की क्रिया वाले जीव, (२) अप्रत्याख्यान क्रिया वाले विशेषाधिक, (३) पारिग्रहिकी क्रिया वाले विशेषाधिक, (४) आरंभिकी क्रिया वाले विशेषाधिक, (५) माया प्रत्यया क्रिया वाले विशेषाधिक ।

(१५) शरीर ❀ इन्द्रिय योग उत्पत्तिद्वार—श्री भगवती सूत्र शतक १७ उद्देशा १ में कहा है कि- ५ शरीर, ५ इन्द्रिय और तीन योग ये तेरह बोल उत्पन्न करने वाले एक जीव के कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं उक्त तेरह बोल उत्पन्न करने वाले बहुत जीवों के तीन क्रिया भी लगती है, चार क्रिया भी लगती है और पांच क्रिया भी लगती है ।

(१६) [क] कोई वस्तु चोर चुरा ले उसे ढूंढ़ते हुए आरंभिकी आदि चार क्रियाएं नियमपूर्वक लगती हैं, मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया की भजना है । ढूंढ़ते हुए ये क्रियाएं भारी लगती हैं और वस्तु मिल जाने पर ये क्रियाए हल्की लगती हैं । [भगवती शतक ५ उद्देशा ६] ।

❀ समुच्चय जीव और मनुष्य में तेरह बोल पाते हैं- ५ शरीर, ५ इन्द्रिय और ३ योग । नारकी देवता में ११ बोल पाते हैं — औदारिक, आहारक शरीर नहीं पाते । चार स्थावर में पांच बोल पाते हैं — ३ शरीर, स्पर्शनेन्द्रिय और काययोग । वायु काय में छह बोल पाते हैं — वैक्रिय शरीर बढ़ा । द्वीन्द्रिय में सात बोल पाते हैं— ३ शरीर, २ इन्द्रिय और २ योग । त्रिन्द्रिय में आठ बोल पाते हैं—

(१६) [ग]—किराणा लेने देखने में किसे कैसी क्रिया लगती है. द्वार— श्री भगवती सूत्र शतक ५ उद्देशा ६ में बताया है कि कोई व्यापारी किराणा बेचता है और खरीदार खरीद लेता है। किन्तु व्यापारी जब तक माल नहीं तोलता है और खरीदार रुपये नहीं देता है तब तक दोनों को चार-चार क्रियाएं लगती हैं. मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया की भजना है। व्यापारी को किराणों की क्रिया भारी और रुपयों की हलकी लगती है और खरीदार को रुपयों की क्रिया भारी और किराणे की क्रिया हलकी लगती है। जब व्यापारी खरीदार को माल तोल देता है पर खरीदार से रुपये नहीं लेता है. उस हालत में व्यापारी को किराणे और रुपये दोनों की क्रिया हलकी लगती है और खरीदार को दोनों की क्रिया भारी लगती है। जब खरीदार व्यापारी को किराणे के रुपये दे देता है. पर व्यापारी माल तोल कर खरीदार को नहीं देता है तब खरीदार को किराणे और रुपये दोनों की क्रिया हलकी लगती है और व्यापारी को दोनों की क्रिया भारी लगती है। जब व्यापारी किराणा तोल कर खरीदार को दे देता है और खरीदार किराणे के रुपये व्यापारी को दे देता है तब व्यापारी को किराणे की क्रिया हलकी और रुपयों की क्रिया भारी लगती है और खरीदार को किराणे की क्रिया

घ्राणेन्द्रिय नहीं । चक्षुरिन्द्रिय है जो चौथा [illegible]—श्रुतेन्द्रिय नहीं ।
त्रीन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय हैं [illegible] के सिवाय [illegible] है ।

भारी और रुपयों को क्रिया हल्की लगती है।

(१७) धनुप से वाण चलाने में जीवों की जो हिंसा होती है उससे किसको कितनी क्रियाए लगती? हैं द्वार—श्री भगवती सूत्र के पांचवें शतक के छठे उद्देशा में बताया है कि कोई धनुर्धारी धनुप वाण ग्रहणकर, धनुप चलाने के आसन से बैठकर, धनुप पर वाण चढ़ाकर, वाण को कान तक खींचकर ऊपर आकाश में वाण फेंकता है उसमें प्राण भूत जीव और सत्त्वों की हिंसा होती है। इससे वाण चलाने वाले को आरंभिकी आदि पांच क्रियाएं लगती है। धनुप, ज्या (धनुप बांधने की डोरी), धनुप का पृष्ट भाग, स्नायु (चमड़े की डोरी जिससे ज्या बांधी जाती है), वाण, वाण के अवयव-शर, पत्र (वाण का मूल भाग), फल (वाण का अग्र भाग) और स्नायु (वाण बांधने की चमड़े की डोरी) ये जिन जीवों के शरीर से बनें हैं उन जीवों को भी पांच क्रियाए लगती है। ऊपर फेंका हुआ बाण भारी होने से स्वभावत: नीचे गिरता है और उससे प्राण भूत जीव सत्त्वों की हिंसा होती है। इस हिंसा से धनुप-वाण चलाने वाले को, धनुप, ज्या, धनुप का पृष्ठ भाग और स्नायु – जिन जीवों के शरीर से बने हैं उन जीवों को चार क्रियाए लगती हैं प्राणातिपात क्रिया नहीं लगती। बाण और वाण के अव-यव शर, पत्र, फल और स्नायु – जिन जीवों के शरीर से बने हैं उन जीवों को पांच क्रियाए लगती हैं। नीचे गिरते

हुए बाण के अवग्रह में जो जीव होते हैं उन्हें भी पांच क्रियाएं लगती हैं। बाण लगने से जीव मर कर नीचे गिरा उससे जीवों की हिंसा होती है इसलिए गिरने वाले जीव को भी पांच क्रियाएं लगती हैं।

(१८) अग्नि जलाने वाले और अग्नि बुझाने वाले—इन दोनों में कौन महा कर्म, महाक्रिया, महा आश्रव और महती वेदना वाला है और कौन अल्प कर्म, अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्प वेदना वाला है? श्री भगवती सूत्र सातवें शतक के दसवें उद्देशे में इस प्रश्न के उत्तर में बतलाया है कि अग्नि जलाने वाला महाकर्म, महाक्रिया, महाआश्रव और महती वेदना वाला है और अग्नि बुझाने वाला अल्प कर्म, अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्प वेदना वाला है। कारण यह है कि अग्नि जलाने वाला अग्नि काय का अल्प आरंभ करता है और पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय का महा आरम्भ करता है और बुझाने वाला अग्निकाय का महा आरम्भ करता है और शेष पांच काय का अल्प आरम्भ करता है।

(१६) श्री भगवती सूत्र शतक १ उ० ८ से क्रिया विषयक प्रश्न यहां दिये जाते हैं। कोई पुरुष कच्छ, द्रह, पर्वत, वन आदि किसी स्थान में जाकर मृग मारने के इरादे से जाल गूंथता है उसे कितनी क्रिया लगती है? उत्तर—जब तक वह पुरुष जाल गूंथ कर धारण करता है, मृग को

बांधता नहीं है, मारता नहीं है तब तक उसे कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी – ये तीन क्रियाएं लगती हैं। जब वह जाल फैला कर उसमें मृग को बांधता है पर मारता नहीं है तब उसे उक्त तीन क्रियाएं और पारितापनिकी – ये चार क्रियाएं लगती हैं। जब वह जाल में बन्धे मृग को मारता है तब उसे प्राणातिपात क्रिया समेत पांच क्रियाएं लगती हैं।

कोई पुरुष कच्छादि में जाकर तृण इकट्ठे कर उनमें आग डालता है उस पुरुष को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। जब तृण इकट्ठे करता है पर उनमें आग नहीं डालता तब उसे तीन–कायिकी, आधि-करणिकी, प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है। जब वह तृणों में आग डाल देता है पर जलाता नहीं तब उसे उक्त तीन और पारितापनिकी ये चार क्रियाएं लगती हैं। जब वह उन तृणों को जला देता है तब उसे प्राणातिपात क्रिया सहित पांचों क्रियाएं लगती हैं।

कोई पुरुष कच्छादि में जाकर मृग मारने के लिये बाण चलाता है उसे कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। जब वह बाण चलाता है पर मृग को बींधता और मारता नहीं है तब उसे तीन क्रियाएं लगती हैं। जब वह बाण चला कर मृग को बींध देता है पर मारता नहीं तब उसे चार क्रिया लगती है। जब वह मृग को बाण

से बींध कर मार देता है तब उसे पांचों ही क्रियाएं लगती हैं।

कोई पुरुष मृग मारने के लिये कान तक बाण खींच कर खड़ा है। इतने में दूसरा पुरुष आकर तलवार से उसका मस्तक काट देता है। बाण पहले से खिंचा होने से छूटता है और मृग को बींध देता है। यहां यह प्रश्न होता है कि दूसरा पुरुष मृग के वैर से स्पृष्ट है या पुरुष के वैर से? उत्तर— 'कज्जमाणे कडे' अर्थात् किया जा रहा है वह किया इस न्याय से मृग को मारने वाला पहला पुरुष मृग के वैर से स्पृष्ट है और पुरुष को मारने वाला दूसरा पुरुष, पुरुष के वैर से स्पृष्ट है। मरने वाला यदि छह माह के अन्दर मर जाता है तो मारने वाले को पांच क्रियाएं लगती हैं। यदि वह छह माह बाद मरता है तो मारने वाले को चार क्रियाएं लगती हैं प्राणातिपात क्रिया नहीं लगती।

कोई पुरुष बर्छी अथवा तलवार से दूसरे पुरुष का मस्तक काटता है तो उसे कितनी क्रिया लगती हैं? बर्छी अथवा तलवार से दूसरे पुरुष के मस्तक काटने वाले को पांच क्रियाएं लगती हैं और वह पुरुष वैर से स्पृष्ट होता है। यह क्योंकि दूसरे के प्राणों के प्रति [illegible] होता है और उस वैर के कारण वह अथवा अन्य से उसका वध भी जल्दी ही होता है। (भगवती सूत्र श० १ उ० ८)।

कोई पुरुष किसी पुरुष को मारता हुआ पुरुष को मारता

है अथवा नो पुरुष– पुरुष के सिवाय अन्य जीवों-को म ता है? श्री भगवती सूत्र श० ६ उ० ३४ में श्री गौतम स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् फरमाते हैं—हे गौतम! पुरुष को मारने वाला वह पुरुष, पुरुष और नोपुरुष–पुरुष के सिवाय दूसरे जीव लीख, जूं, चरमिया, कृमि आदि दोनों को मारता है।

इसी तरह अश्व, हाथी, बाघ, सिंह यावत् चील (चिल्ल) तक १८ (अठारह) बोल कहना।

इसी प्रकार त्रस प्राणी विशेष को मारता हुआ पुरुष उस त्रस प्राणी को और उसके सिवाय दूसरे त्रस प्राणियों को भी मारता है।

ऋषि को मारता हुआ पुरुष क्या ऋषि को मारता है या नो ऋषि यानी ऋषि के सिवाय दूसरे जीवों को भी मारता है? उत्तर— ऋषि को मारता हुआ पुरुष ऋषि को मारता है और ऋषि के सिवाय अनन्त जीवों को मारता है। कारण यह है कि ऋषि के मर जाने पर वह अविरत हो जाता है और अनन्त जीवों का घातक होता है। अथवा ऋषि जीते हुए अनेक प्राणियों को प्रतिबोध देता है। प्रतिबोध पाकर वे जीव क्रमशः मोक्ष प्राप्त करते हैं और मुक्त होकर वे अनन्त संसारी जीवों के अहिंसक होते हैं। उन अनन्त जीवों की अहिंसा में वह ऋषि कारण होता है। इसलिये ऋषि को मारने वाले को ऋषि का और अनन्त जीवों का घातक बतलाया है। यह एक भंग हुआ। ये २० भंग एक जीव के हुए।

पुरुष को मारने वाला पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है या नो पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है ? उत्तर—पुरुष को मारने वाला (१) पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है अथवा (२) एक पुरुष के वैर से और एक नोपुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है अथवा (३) एक पुरुष के वैर से और बहुत नोपुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है। इस तरह ऋषि के सिवाय शेष १९ बोल के तीन-तीन भंग कहना। १९×३=५७ भंग हुए। एक ऋषि को मारने वाला ऋषि के वैर से और ऋषि के सिवाय अनन्त जीवों के वैर से स्पृष्ट होता है =१ भंग ही होता है। ५७+१=५८ भंग हुए। ये ५८ और २० समुच्चय के कुल ७८ भंग हुए।

क्या पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ? उत्तर—पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है। इसी तरह अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का कहना। ५×५= २५ भंग हुए। इन पचीस बोल के श्वासोच्छ्वास लेने और छोड़ने वाले जीव को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। २५ भंग हुए।

वृक्ष के मूल कन्द स्कन्ध यावत् बीज तक के दस बोलों को चलायमान करती, गिराती हुई वायु को कितनी क्रिया लगती है ? उत्तर—कभी तीन, कभी चार और कभी पांच

क्रिया लगती है। ये १० भंग हुए। सब मिला कर ७८+२५+२५+१०=१२८ भग हुए।

श्री भगवती सूत्र श० ३ उ० ३ में श्री मंडित पुत्र पूछते हैं— हे भगवन्! क्रिया कितनी प्रकार की होती है? उत्तर— हे मडित पुत्र! क्रिया के पांच भेद हैं—कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया। कायिकी क्रिया के दो भेद – अनुपरत कायिकी और दुष्प्रयुक्त कायिकी। विरति रहित यानी अविरत जीव के शरीर से होने वाली क्रिया अनुपरत कायिकी क्रिया है। दुष्टरूप से प्रयुक्त काय की क्रिया दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया है अथवा दुष्ट योग वाले व्यक्ति के शरीर की क्रिया दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया है। यह क्रिया छठे गुणस्थान वाले को लगती है। प्रमाद होने से साधु के भी शरीर का दुष्ट प्रयोग होता है। आधिकरणिकी क्रिया के दो भेद – संयोजनाधिकरणिकी और निर्वतनाधिकरणिकी। पहले से बने हुए शस्त्रों के अवयवों को मिलाना सयोजनाधिकरणिकी क्रिया है। नये सिरे से शस्त्र बनाना निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया है। प्राद्वेषिकी क्रिया के दो भेद—जीव प्राद्वेषिकी और अजीव प्राद्वेषिकी। जीव अर्थात् स्वपर उभय की आत्मा पर द्वेष करना जीव प्राद्वेषिकी क्रिया है। अजीव— कांटा, पत्थर आदि जड़ पदार्थ पर द्वेष करना अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया है। पारितापनिकी क्रिया के दो भेद – स्व हस्त पारितापनिकी और पर हस्त पारितापनिकी। अपने हाथ से स्व पर और उभय को

परिताप उपजाना स्व हस्त पारितापनिकी क्रिया है । दूसरे के हाथ से स्व पर और उभय को परिताप उपजाना पर हस्त पारितापनिकी क्रिया है। प्राणातिपात क्रिया के भी दो भेद हैं–स्व हस्त प्राणातिपात क्रिया और पर हस्त प्राणातिपात क्रिया। इन दोनों के भी तीन तीन भेद पारितापनिकी तरह होते हैं।

हे भगवन्! पहले क्रिया होती है फिर वेदना होती है या पहले वेदना होती है फिर क्रिया होती है? हे मंडित पुत्र! पहले क्रिया होती है फिर वेदना होती है किन्तु पहले वेदना फिर क्रिया नहीं होती है।

अहो भगवन्! श्रमण निर्ग्रंथ को क्रिया लगती है? हे मंडित पुत्र! हां लगती है। अहो भगवन्! किस कारण? हे मंडित पुत्र! प्रमाद और योग के निमित्त से श्रमण निर्ग्रंथ को भी क्रिया लगती है।

श्री मंडित पुत्र भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न करते हैं—हे भगवन्! कम्पन, विकम्पन (विविध प्रकार से कम्पन), चलन, स्पन्दन, क्षोभन (क्षुब्ध करना, पृथ्वी में प्रवेश करना अथवा पृथ्वी को भय पैदा करना), उदीरण (प्रबल रूप से प्रेरित करना), तथा उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण आदि भिन्न-भिन्न रूप से परिणमन – इन सात क्रियाओं में प्रवृत्ति करता हुआ सयोगी जीव क्या सकल कर्म क्षय रूप अन्तक्रिया करता है? उत्तर— हे मंडित पुत्र! यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि सयोगी जीव जब इस सात प्रकार की

क्रियाओं को करता है उस समय १. * आरंभ करता है २. संरम्भ करता है और ३. समारम्भ करता है तथा ४. आरंभ, ५. संरम्भ और ६ समारम्भ में वर्तता है, ७. आरम्भ, ८. संरम्भ और ९. समारंभ करता हुआ और १०. आरम्भ, ११. संरम्भ १२. समारंभ में वर्तता हुआ जीव, १३. प्राणी, १४. भूत, १५. जीव और १६. सत्त्व को १७ दुःख पहुंचाता है, १८. शोक कराता है, १९. अधिक शोक पैदा कर उन्हें झूराता है, उनके २०. आंसू गिरवाता है, उन्हें २१. पीटता है– पीड़ा उपजाता है और २२. परिताप उत्पन्न करता है। इस कारण २२ बोलों में प्रवर्तता हुआ उपरोक्त सात क्रियाएं करता हुआ जीव अन्तक्रिया नहीं करता। इसके विपरीत इन सात क्रियाओं को नहीं करता हुआ और उपरोक्त २२ बोलों में नहीं प्रवर्तता हुवा जीव अतक्रिया करता है। इसे दृष्टान्त देकर समझाते हैं। जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पुलों में आग डाले तो आग डालने के साथ घास के पुले जलकर भस्म हो जाते हैं। जैसे तपे हुए लोहे के तवे पर कोई जल बिन्दु डाले तो वह तत्काल जलकर नष्ट हो

* पृथिवी आदि जीवों की हिंसा का संकल्प करना संरम्भ है, उन्हें परिताप उपजाना समारम्भ है और उनकी हिंसा करना उन्हें मारना आरम्भ है।

…तुर्मास अथवा मास कल्प बिता कर, विशेष कारण बिना उसके बाद भी फिर वहीं रहना कालातिक्रांत दोष है।

(२) उपस्थान क्रिया— स्थान विशेष में चातुर्मास अथवा मास कल्प पर्यन्त रहकर फिर जितना काल रहे उससे दुगुना समय बाहर बिताये बिना उसी स्थान में आकर रहना उपस्थान क्रिया दोष है।

(३) अभिक्रांत क्रिया — गृहस्थ द्वारा श्रमण ब्राह्मणादि के लिये बनाये हुए मकान में शाक्यादि श्रमण ब्राह्मणादि के रहने के बाद साधु का रहना अभिक्रांत क्रिया है।

(४) अनभिक्रान्त क्रिया—गृहस्थ द्वारा श्रमण ब्राह्मणादि के लिये बनाये हुए मकान में श्रमण ब्राह्मण के रहने से पहले ही साधु का रहना अनभिक्रान्त क्रिया दोष है।

(५) वर्ज्य क्रिया साधु अपने लिये बनाये हुए मकान में नहीं रहते इसलिये गृहस्थ अपने लिये बनाये हुए मकान को साधु के लिए दे दे और अपने लिये नया मकान बनावे तो वह मकान परचात् कर्म दोष वाला होने से वर्ज्य क्रिया दोष वाला है।

का नाम लेकर उनके उद्देश्य से ही बनाया गया है, उसमें रहना सावद्य क्रिया दोष है।

(८) महासावद्य क्रिया— साधु के निमित्त बनाये गये मकान में रहना महासावद्य क्रिया दोष है।

(९) अल्प×सावद्य क्रिया—गृहस्थ द्वारा अपने खुद के लिये बनाये हुए मकान में रहना अल्प सावद्य क्रिया है।

इन नौ स्थानों में से अभिक्रान्त क्रिया और अल्प सावद्य क्रिया वाले स्थान साधु के रहने योग्य हैं। शेष सदोष होने से साधु के रहने योग्य नहीं है।

सूत्र कृतांगसूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के दूसरे अध्ययन में तेरह क्रिया स्थानों का वर्णन है—[१] अर्थ दण्ड, [२] अनर्थ दण्ड, [३] हिंसा दण्ड, [४] अकस्माद् दण्ड, [५] दृष्टि विपर्यास दण्ड, [६] मृषावाद प्रत्ययिक, [७] अदत्तादान प्रत्ययिक, [८] अध्यात्म प्रत्ययिक, [९] मान प्रत्ययिक [१०] मित्र द्वेष प्रत्ययिक, [११] माया प्रत्ययिक, [१२] लोभ प्रत्ययिक, [१३] ईर्यापथिक।

(१) अर्थ दण्ड—प्रयोजनवश त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से लगने वाला पाप। (२) अनर्थ दण्ड— बिना प्रयोजन त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से लगने वाला पाप। (३) हिंसा दण्ड— इस जीव ने मुझे मारा, मेरे स्वजनों

×अल्प शब्द यहाँ अभाव का परिबोधक है।

प्रत्ययिक– परिवार में माता, पिता, भाई, वहन, पत्नी, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू आदि के साथ रहते हुए उनके छोटे से अपराध करने पर भी सख्त दण्ड देना, उन्हें अनेक तरह से तंग करना, दुःख पहुंचाना –इससे लगने वाला पाप मित्र द्वेप प्रत्ययिक है। ऐसा व्यक्ति जब तक घर में रहता है घर वाले दुःखी रहते हैं। उसके वाहर जाने पर वे सुख मानते हैं। वह इस लोक में अपना अहित करता है, परलोक में क्रोधी होता है, सदा जलता रहता है तथा चुगलखोर होता है। (११) माया प्रत्ययिक– विश्वास देकर लोगों को ठगना, छिप कर पापाचरण करना, अतिशय तुच्छ होते हुए भी अपने को महान् समझना, आर्य होते हुए भी अनार्य भाषा बोलना, अन्यथा होते हुए भी अपने को अन्यथा समझना, प्रश्नकर्त्ता के कुछ पूछने पर सही उत्तर न देकर और ही उत्तर देना – इस प्रकार माया से लगने वाला पाप माया प्रत्ययिक कहलाता है। (१२) लोभ प्रत्ययिक– कई पाखण्डी लोग स्वार्थ साधन के लिये बहुत सी कल्पित बातें करते हैं। प्राण भूत जीव सत्त्व के सम्बन्ध में मिश्र वचन बोलते हैं। मैं हनन, आज्ञापन, परिताप और उपद्रव योग्य नहीं हूँ–दूसरे प्राणी हनन, आज्ञापन, परिताप और उपद्रव योग्य हैं। ये लोग कामिनी और काम-भोगों में आसक्त रहते हैं। पांच दस वर्ष या कुछ अधिक काल तक कामभोगों का सेवन कर स्थिति पूरी होने पर काल करते हैं और किल्विषी देव होते हैं। वहां से निकल कर वे जन्मान्ध होते हैं, मूक [गूंगे]

होते हैं। इस प्रकार लोभ के कारण जो पाप लगता है वह लोभ प्रत्ययिक कहलाता है। (१३) ईर्यापथिकी— आत्मा स्वरूप की प्राप्ति हेतु आश्रव का निरोध कर संवर क्रिया में प्रवृत्ति करने वाले, पाँच समिति, तीन गुप्ति की आराधना करने वाले, शरीर एवं इन्द्रियों का गोपन करने वाले गुप्त ब्रह्मचारी अनगार उपयोग पूर्वक यतना के साथ गमनादि क्रिया करते हैं उन्हें सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। इस क्रिया में पहले समय बंध होता है, दूसरे समय में वेदन होता है और तीसरे समय में निर्जरा होती है। इस प्रकार लगने वाला पाप ईर्यापथिकी कहलाता है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र के दूसरे संवर द्वार में आत्म प्रशंसा एवं पर निन्दा रूप वचन बोलने का निषेध किया है। जैसे— तू मेधावी नहीं है, तू धन्य नहीं है, तू प्रियधर्मा नहीं है, तू कुलीन नहीं है, तू दानी नहीं है, तू शूरवीर नहीं है, तू रूपवान नहीं है, तू सौभाग्यशाली नहीं है, तू पंडित नहीं है, तू बहुश्रुत नहीं है, तू तपस्वी नहीं है, परलोक के विषय में तेरी बुद्धि निश्चित नहीं है। इस प्रकार जाति कुल रूप व्याधि और रोग को प्रकट करने वाला निन्दाकारी वचन अवर्णनीय है, ऐसे वचन द्रव्य और भाव से सदोष अपकार करने वाला है। इस प्रकार का सत्य वचन होने पर भी नहीं बोलना चाहिये।

पच्चीस क्रिया के नाम— १. कायिकी, २. आधिकरणिकी,

३. प्राद्वेषिकी, ४. पारितापनिकी, ५. प्राणातिपात क्रिया, ६. आरंभिकी (आरंभिया), ७. पारिग्रहिकी ८. माया प्रत्ययिकी, ९. अप्रत्याख्यान क्रिया, १०. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी, ११. दृष्टिजा (दिट्ठिया) १२ स्पृष्टिजा–पृष्टिकी (पुट्ठिया) १३. प्रातीत्यिकी (पाडुच्चिया), १४. सामन्तोपनिपातिनी (सामन्तोवणिकाइया), १५. नैसृष्टिकी (णेसत्थिया), १६. स्वहस्तिकी (साहत्थिया), १७. आज्ञापनिकी या आनयनिकी (आणवणिया), १८. वदारणिकी (वेयारणिया), १९. अनाभोगप्रत्ययिकी (अणाभोग वत्तिया), २०. अनवकांक्षा प्रत्ययिकी (अणवकंख वत्तिया), २१ प्रेम प्रत्ययिकी (पेज्ज-वत्तिया), २२. द्वेष प्रत्ययिकी (दोसवत्तिया), २३. प्रयोग क्रिया (अणउपयोग वत्तिया), २४ समुदान क्रिया, २५ ईर्यापथिकी क्रिया।

पहली पांच क्रियाओं का स्वरूप और उनके भेद ऊपर बता चुके हैं। ६. आरंभिकी [आरंभिया] क्रिया—पृथ्वीकाय आदि छह काय के जीवों की हिंसा करना आरंभ है। आरंभ से लगने वाली क्रिया को आरंभिकी क्रिया कहते हैं। इसके दो भेद हैं – जीव आरंभिकी और अजीव आरंभिकी। जीव की हिंसा से लगने वाली क्रिया जीव आरंभिकी है। अजीव में जीव का आरोप कर भावों से उसकी हिंसा करना अजीव आरंभिकी क्रिया है। ७. पारिग्रहिकी—जीव अजीव पर ममत्व मूर्छा से लगने वाली क्रिया पारिग्रहिकी क्रिया है। इसके

होकर स्वयं क्रोध मान करने से तथा सामने वाले को क्रोध मान उत्पन्न हो ऐसा व्यवहार करने से लगने वाली क्रिया द्वेष प्रत्ययिकी है । इसके दो भेद है – क्रोध द्वेष प्रत्ययिकी और मान द्वेष प्रत्ययिकी । २३. प्रयोग क्रिया –प्रयोग प्रत्ययिकी (अणउपयोग वत्तिया) आर्त रौद्र ध्यान करना, तीर्थंकरों द्वारा गर्हित सावद्य भाषा बोलना तथा प्रमादपूर्वक गमनागमनादि क्रियाए करना – इस प्रकार के मन, वचन, काया के व्यापारों से लगने वाली क्रिया प्रयोग क्रिया कहलाती है । मन, वचन, काया के भेद से इस क्रिया के मन प्रयोग क्रिया, वचन प्रयोग क्रिया और काय प्रयोग क्रिया, ये तीन भेद हैं। २४. समुदान क्रिया– (समुदाणकिरिया) जिस क्रिया से आठ कर्मों का समूह ग्रहण किया जाता है अथवा नाटक, सिनेमा, मेले आदि में एकत्रित जीवों के सरीले अध्यवसायों तथा हंसने, खेलने आरम्भ की प्रशंसा करने रूप शरीर की क्रियाओं से एक साथ समुदाय रूप में सभी के जो सरीखा कर्मबन्ध होता है उसे समुदान क्रिया कहते हैं । ये सभी जीव जन्मान्तर में एक साथ इन कर्मों का फल भोगते हैं । २५. ईर्यापथिकी (ईरियावहिया)–अप्रमत्त संयमी, उपशान्त मोह क्षीण मोह और केवली भगवान् के उपयोगपूर्वक गमनागमन करते, सोते, बैठते खाते–पीते, भाषण करते, वस्त्र पात्रादि रखते, ग्रहण करते समय योगवश जो साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है उसे ईर्यापथिकी क्रिया कहते हैं । यह क्रिया पहले समय में

बन्धती है, दूसरे समय में वेदी जाती है और तीसरे समय में उसकी निर्जरा होती है।

आठ कर्म भोगने* के कारणों का थोकड़ा

[पन्नवणा सूत्र २३ वां पद उद्देशा १]

कति पगड़ी कह बंधइ, कइहिवि ठाणेहिं बंधए जीवो।
कति वेदेइ य पगड़ी, अणुभावो कइविहो कस्स॥

१. कर्म प्रकृतियों के नाम. २ जीव किस प्रकार इन कर्म प्रकृतियों को बांधता है? ३. किन स्थानों से यानी कारणों से जीव कर्मप्रकृतियां बांधता है? ४. कितनी कर्मप्रकृतियां वेदता है? ५. किसका कितने प्रकार का विपाक है? इन पांच द्वारों का इस थोकड़े में वर्णन है।

(१) कर्म प्रकृतियों के नाम— ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। पदार्थों के विशेष धर्म का जानना ज्ञान है। जिस कर्म द्वारा ज्ञान का आवरण हो उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। जैसे आंखों के देखने की आंखों पर पट्टी बांध देने से उसे नहीं दिखाई देता इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से आत्मा पदार्थ के विशेष स्वरूप को नहीं जान पाता, उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता। पदार्थ की सत्ता, सामान्य धर्म को जानना दर्शन है।

---

* कर्म बंधने के ८४ कारण श्री भगवती सूत्र श० ८ उ० ९ में हैं। कर्म भोगने के ९३ कारण श्री पन्नवणा सूत्र पद २३ उद्देशा १ में हैं।

जिस कर्म द्वारा दर्शन का आवरण हो उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं । दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाल के समान है । जैसे द्वारपाल जिस पुरुष से नाराज है उसे राजा के पास जाने से रोक देता है चाहे राजा उसे देखना भी चाहता हो । इसी तरह दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के दर्शन में रुकावट उत्पन्न करता है । अनुकूल और प्रतिकूल विषयों की प्राप्ति होने पर जो सुख दुःख रूप से अनुभव किया जाय वह वेदनीय कर्म है। शहद लिपटी तलवार की धार के समान यह वेदनीय कर्म है। शहद को चाटने के समान सातावेदनीय है और धार से जीभ कट जाने के समान असातावेदनीय है । जिस कर्म के उदय से आत्मा अच्छे बुरे के विवेक को खो देता है, हित अहित को नहीं समझता उसे मोहनीय कर्म कहते हैं । यह कर्म मदिरा के समान है । मदिरा पीने से जैसे प्राणी अपना विवेक खो देता है अपना भला बुरा नहीं सोच सकता, इसी प्रकार मोहनीय कर्म के उदय से जीव हित अहित, अच्छे बुरे का विवेक खो देता है । जिस कर्म के उदय से जीव स्व कर्मोपार्जित नरकादि गति में नियत काल तक रहता है उसे आयुकर्म कहते हैं । यह कर्म कारागार के समान है । जैसे कैदी को कारागार की अवधि समाप्त होने तक कारागार में रहना पड़ता है, पहले नहीं छूट सकता, उसी प्रकार जीव को आयुकर्म के उदय से निश्चित काल तक नरकादि गतियों में रहना पड़ता है । जिस कर्म से जीव नरकादि गति पाकर विविध पर्यायों को अनुभव

करता है उसे नाम कर्म कहते हैं। यह कर्म चित्रकार के समान है। जैसे चित्रकार विविध रंगों से विविध रूप बनाता है उसी तरह नाम कर्म के उदय से जीव अच्छे बुरे नाना प्रकार के रूप पाता है और विविध पर्यायों का अनुभव करता है। जिस कर्म के उदय से जीव उच्च नीच कुलों में जन्म लेकर उच्च नीच कहलाता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं। यह कर्म कुम्भकार के समान है। जैसे कुम्भकार अनेक तरह के घड़े बनाता है। उनमें कुछ घड़े कलश रूप होते हैं और अक्षत चन्दनादि से पूजने योग्य होते हैं तथा कुछ घड़े शराब आदि घृणित पदार्थों के रखने योग्य होने से घृणास्पद होते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य-पराक्रम में अन्तराय यानी विघ्न बाधा उपस्थित होती है उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। यह कर्म भण्डारी के समान है। जैसे राजा किसी याचक को दान देना चाहता है और दान देने के लिये आज्ञा भी देता है किन्तु भण्डारी उसमें बाधा उपस्थित कर राजा की इच्छा और याचक की मुराद नहीं होने देता। इसी तरह अन्तराय कर्म भी जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न रूप होता है और जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य से वंचित कर देता है।

(२) जीव किस प्रकार इन कर्म प्रकृतियों को बांधता है ?—ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से दर्शनावरणीय कर्म का उदय होता है। दर्शनावरणीय कर्म के उदय से दर्शन मोहनीय

कर्म का उदय होता हैं। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यात्व का उदय होता है और मिथ्यात्व के उदय से जीव आठ कर्म प्रकृतियां बांधता है। बहुधा ऐसा होता है इस कारण यह नियम बताया गया है। वैसे सम्यग्दृष्टि भी आठ कर्म बांधता है पर उसके मिथ्यात्व का उदय नहीं होता। सूक्ष्मसम्पराय आदि गुणस्थान वाले आठ कर्म भी नहीं बांधते हैं। तात्पर्य यह है कि पूर्व कर्म के परिणाम से उत्तर कर्म उत्पन्न होता है जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से पत्र आदि। कहा भी है—

जीव परिणाम हेऊ, कम्मत्ता पोग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्म निमित्तं, जीवो वि तहेव परिणमइ ॥

अर्थात् जीव के परिणाम से पुद्गल कर्म रूप से परिणत होते हैं और कर्म पुद्गलों के कारण जीव का वैसा परिणाम होता है।

आठ कर्म चार तरह से बन्धते हैं – प्रकृतिबन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध, प्रदेशबन्ध। जीव के साथ सबद्ध कर्म पुद्गलों में ज्ञान को आवरण करने, दर्शन को आवरण करने सुख, दुःख देने आदि जुदा-जुदा स्वभाव का होना प्रकृतिबन्ध है। आठ कर्म एवं उनकी १४८ उत्तर प्रकृतियों का पृथक्-पृथक् स्वभाव प्रकृतिबन्ध रूप है। जीव के साथ संबद्ध ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का निश्चित काल तक अपने स्वभाव को न छोड़ते हुए जीव के साथ रहना स्थिति बन्ध है। कर्मों के शुभ अशुभ फल देने की तीव्रता मन्दता आदि विशेषताओं का न्यूनाधिक

होना अनुभागबन्ध है। अनुभागबन्ध को अनुभावबन्ध, अनुभव बन्ध तथा रसबन्ध भी कहते हैं। जीव के साथ बन्ध को प्राप्त कार्मण वर्गणा के स्कन्धों का न्यूनाधिक प्रदेश वाला होना प्रदेशबन्ध है। चार प्रकार के बन्ध का स्वरूप समझाने के लिये मोदक का दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे कोई मोदक सोंठ का, कोई मेथी का और कोई अजवायन का होता है। इनमें किसी का स्वभाव वायु नाशक, किसी का पित्त नाशक और किसी का कफ नाशक होता है। इसी तरह जीव के साथ बन्ध को प्राप्त कर्म पुद्गलों का — ज्ञान को रोकना, दर्शन को रोकना, सुख दुःख देना आदि — पृथक् पृथक् (अलग अलग) स्वभाव होना प्रकृति बन्ध है। जैसे कोई मोदक एक सप्ताह तक, कोई एक पक्ष तक और कोई एक मास तक विकृत नहीं होता और निश्चित अवधि के बाद विकृत होकर अपने स्वभाव को छोड़ देता है, इसी तरह कर्मों में कोई अन्तर्मुहूर्त तक, कोई बीस कोटि कोटि सागरोपम तक और कोई सत्तर कोटि कोटि सागरोपम तक अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हुए जीव के साथ सम्बद्ध रहते हैं यही स्थिति बन्ध है। जैसे कोई मोदक बहुत मीठा होता है, कोई कम मीठा होता है, कोई मोदक अधिक तिक्त होता है और कोई कम तिक्त होता है इसी तरह कर्म पुद्-गलों की मन्द मन्दतर, मन्दतम तथा तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम शुभ अशुभ फल देने की शक्ति अनुभाग बन्ध है। अनुभाग बन्ध को समझाने के लिये चतुःस्थान पतित, त्रिस्थान पतित, द्वि

स्थान पतित और एक स्थान पतित सोंठ और नीम के रस का* दृष्टान्त भी दिया जाता है। जैसे कोई मोदक छटांक का, कोई अध पाव कोई पाव भर– इस प्रकार भिन्न भिन्न परिमाण का होता है। इसी प्रकार जीव के साथ बन्ध को प्राप्त कार्मण स्कन्धों का न्यूनाधिक प्रदेश वाला होना प्रदेश बन्ध है।

(३) किन स्थानों से जीव कर्म प्रकृतियां बांधता है?– जीव राग और द्वेष - इन दो स्थानों से कर्म प्रकृतियां बांधता है। माया और लोभ राग रूप हैं तथा क्रोध और मान द्वेष रूप हैं। आठ कर्म बांधने के ये सामान्य कारण पन्नवणा सूत्र में बताये हैं। भगवती सूत्र के शतक ८ उद्देशा ६ में आठ कर्मों के बन्ध के अलग अलग कारण बताये हैं जो इस प्रकार हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म छह कारणों से बन्धता है— १. णाणपडिणीययाए—ज्ञान और ज्ञानी का विरोध करना, ज्ञानी से शत्रुता रखना और उसके प्रतिकूल आचरण करना। २. णाण णिण्हवणयाए— ज्ञान को छिपाना एवं मानवश ज्ञानदाता गुरु का नाम छिपाना। ३ णाणंतराएण—ज्ञान में अन्तराय देना। ४. णाणप्पदोसेणं– ज्ञान और ज्ञानी से द्वेष करना। ५. णाणच्चासायणाए– ज्ञान और ज्ञानी की आशातना करना। ६. णाणविसंवादणा जोगेण– ज्ञानी के साथ विसंवाद करना, ज्ञानी

* नीम या सोंठ का स्वाभाविक एक सेर रस है वह एक स्थान पतित है। उसे उबालकर आधा सेर रखना द्वि स्थान पतित है। एक सेर रस को उबाल कर उसका तीसरा हिस्सा रखना त्रि स्थान पतित है। एक सेर को उबाल कर पाव सेर रखना चतुःस्थान पतित है।

में दोष दिखाना और ज्ञान पर अरुचि रखना । दर्शनावरणीय कर्म छह कारणों से बन्धता है— १. दंसणपडिणीययाए- दर्शन और दर्शनवान से विरोध करना, दर्शनवान से शत्रुता रखना और उसके प्रतिकूल आचरण करना । २. दंसणनिण्हवणयाए दर्शन का गोपन करना, दर्शनवान का नाम छिपाना । ३. दंसणंतराएणं— दर्शन में अन्तराय देना । ४. दंसणप्पदोसेणं— दर्शन और दर्शनवान से द्वेष रखना । ५. दंसणाच्चासायणाए— दर्शन और दर्शनवान की आशातना करना । ६. दंसणविसंवादणाजोगेणं— दर्शन वाले के साथ विसंवाद करना, उनमें दोष निकालना और दर्शन में अरुचि रखना ।

वेदनीय कर्म के दो भेद— साता वेदनीय और असाता वेदनीय । साता वेदनीय दस कारणों से बन्धता है— १. पाणाणुकंपयाए— प्राण यानी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की अनुकम्पा करना, २. भूयाणुकम्पयाए— भूत यानी वनस्पति की अनुकम्पा करना, ३. जीवाणुकम्पयाए— जीव अर्थात् पंचेन्द्रिय की अनुकम्पा करना, ४. सत्ताणुकम्पयाए—सत्व यानी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय की अनुकम्पा करना, ५. बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए— बहुत प्राण भूत जीव और सत्वों को दुःख न पहुंचाना, ६. असोयणयाए— इन्हें शोक नहीं कराना, ७. अजूरणयाए— इन्हें नहीं झूरना— यानी खेद नहीं पहुंचाना, नहीं रुलाना, ८. अतिप्पणयाए— वेदना पहुंचाकर इन के टप टप आंसू नहीं गिराना, ९. अपिट्टणयाए— इन्हें नहीं

मारना, पीटना १०. अपरितावणयाए– इन्हें परिताप उत्पन्न न करना। असाता वेदनीय बारह कारणों से बंधता है— प्राण भूत जीव और सत्त्व को, १. दुक्खणयाए- दुःख पहुंचाना, २. सोयणयाए- शोक कराना, ३. भूरणयाए-- भूराना, रुलाना, पश्चात्ताप कराना, ४. तिप्पणयाए- वेदना पहुंचाकर इनके टप-टप आंसू गिरवाना, ५. पिट्टणयाए- मारना पीटना, ६. परितावणयाए-–परिताप उपजाना, ७ बहु दुक्खणयाए- बहुत दुःख पहुंचाना, ८. बहु सोयणयाए- बहुत शोक कराना, ६. बहु भूरणयाए- बहुत भूराना, बहुत रुलाना, १०. बहु तिप्पणयाए- बहुत टप टप आंसू गिरवाना, ११. बहु पिट्टणयाए- बहुत मारना पीटना, १२. बहु परितावणाए- बहुत परिताप उपजाना।

मोहनीय कर्म छह प्रकार से बन्धता है– १. तिव्व कोहयाए- तीव्र क्रोध करना, २. तिव्व माणयाए- तीव्र मान करना, ३. तिव्व मायाए- तीव्र माया का सेवन करना, ४. तिव्व लोभाए- तीव्र लोभ करना, ५. तिव्व दसण मोहणिज्जयाए- तीव्र दर्शन मोहनीय, ६. तिव्व चरित्त मोहणिज्जयाए- तीव्र चारित्र मोहनीय।

आयु कर्म के चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु। सोलह कारणों से आयुकर्म बन्धता है। चार कारणों से नरकायु का बन्ध होता है- महारम्भ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय वध और कुणिमाहार अर्थात् मांस का आहार। चार कारणों से तिर्यंचायु का बन्ध होता है- माया सेवन करना,

गूढ़ माया सेवन करना, असत्य बोलना, झूठा तोल, झूठा माप रखना अर्थात् खरीदने के तोल विशेष भारी और खरीदने का माप अधिक लम्बा रखना तथा बेचने के तोल और माप हल्के और छोटे रखना । चार कारणों से मनुष्यायु का बंध होता है—भद्र प्रकृति होना, स्वभाव से विनीत होना, अनुकम्पाशील अर्थात् दयालु होना तथा मात्सर्य यानी ईर्ष्या न रखना । चार कारणों से देवायु का बन्ध होता है- सराग संयम, संयमासंयम यानी श्रावक धर्म का पालन, अकाम निर्जरा और बाल तप ।

नाम कर्म के दो भेद— शुभ नाम कर्म और अशुभ नाम कर्म । शुभ नाम कर्म चार कारणों से बन्धता है- काया की सरलता, वचन की सरलता, भावों की सरलता और विसं-वाद रहित योग का होना अर्थात् मन, वचन, काया से एकसा व्यवहार करना । अशुभनाम कर्म चार कारणों से बन्धता है- काया की वक्रता, वचन की वक्रता, भावों की वक्रता और विसं-वादी योग होना अर्थात् करना कुछ, कहना और सोचना कुछ और ही ।

गोत्र कर्म के दो भेद— उच्च गोत्र और नीच गोत्र । इनके बन्ध के आठ आठ कारण हैं । जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य इन आठ बोलों का अभिमान न करने से उच्चगोत्र का बन्ध होता है । इन आठ बोलों का अभिमान करने से नीच गोत्र बन्धता है ।

अन्तराय कर्म पांच कारणों से बन्धता है— १ दान में

अन्तराय देना, २. लाभ में अन्तराय देना, ३. भोग में अन्तराय देना, ४. उपभोग में अन्तराय देना, ५. वीर्य-पराक्रम में अन्तराय देना ।

(४) कितनी कर्म प्रकृतियां वेदता है ?—क्या जीव ज्ञानावरणीय कर्म को वेदता है ? जिस जीव ने घाती कर्मो का क्षय कर दिया है वह ज्ञानावरणीय कर्म नहीं वेदता । शेष सभी जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हैं । इसी तरह मनुष्य का कहना । शेष तेईस दडक के जीव नियमपूर्वक ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हैं । ज्ञानावरणीय कर्म की तरह दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म वेदने का कहना । वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार कर्म जीव वेदता भी है और नहीं भी वेदता है । सिद्धात्माओं ने इन चारों अघाती कर्मों का क्षय कर दिया है इसलिये ये इन्हें नहीं वेदते । शेष चौवीस दंडक के जीव नियमपूर्वक इन चारों कर्मों को वेदते हैं ।

(५) किस कर्म का कितने प्रकार का विपाक है यानी कौनसा कर्म कितने प्रकार से भोगा जाता है ?—ज्ञानावरणीय कर्म * दस प्रकार से भोगा जाता है– १. श्रोत्रावरण ×

---

* ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की १४८ प्रकृतियों का विशेष विवरण सेठिया संस्था द्वारा प्रकाशित " नव तत्व " के पृष्ठ ५० से ७० तक में दिया हुवा है ।

× श्रोत्र से श्रोत्रेन्द्रिय विषयक क्षयोपशम ग्रहण किया गया है और श्रोत्र विज्ञान से श्रोत्रेन्द्रिय का उपयोग ग्रहण किया गया है ।

शुभ नाम कर्म चौदह प्रकार से भोगा जाता है— १. इष्ट शब्द, २. इष्ट रूप, ३. इष्ट गन्ध, ४. इष्ट रस, ५. इष्ट स्पर्श, ६. इष्ट गति, ७. इष्ट स्थिति, ८. इष्ट लावण्य शरीर की कांति, ९. इष्ट यशः कीर्ति, १०. इष्ट उत्थान,* कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, ११. इष्ट स्वर, १२. कान्त स्वर, १३. प्रिय स्वर, १४. मनोज्ञ स्वर। अशुभ नाम कर्म चौदह प्रकार से भोगा जाता है–१.अनिष्ट शब्द, २. अनिष्ट रूप, ३. अनिष्ट गन्ध, ४. अनिष्ट रस, ५. अनिष्ट स्पर्श, ६. अनिष्ट गति, ७. अनिष्ट स्थिति, ८. अनिष्ट लावण्य, ९. अनिष्ट यशः कीर्ति, १०. अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, ११. अनिष्ट स्वर, १२. अकान्त स्वर, १३. अप्रिय स्वर, १४. अमनोज्ञ स्वर। उच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है—१. जाति, २. कुल, ३ बल, ४. रूप, ५. तप, ६. श्रुत, ७. लाभ, ८. ऐश्वर्य का विशिष्ट होना। नीच गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है— १. जाति, २. कुल, ३. बल, ४. रूप, ५. तप, ६. श्रुत, ७. लाभ, ८. ऐश्वर्य से हीन होना। अन्तराय कर्म पांच प्रकार से भोगा जाता है— १. दानान्तराय, २. लाभान्तराय, ३. भोगान्तराय, ४. उपभोगान्तराय, ५. वीर्यान्तराय।

---

* उत्थान— शरीर की चेष्टा विशेष, कर्म-भ्रमणादि, बल— शारीरिक सामर्थ्य, वीर्य- आत्मा की शक्ति, पुरुषकार- अभिमान विशेष, पराक्रम- अभिमान का कार्यरूप में परिणत होना।

सातिया तीन भाग यानी $\frac{300}{7}$ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय १००० सागरोपम के सातिया तीन भाग यानी $\frac{3000}{7}$ सागरोपम की बांधते हैं। संज्ञी पचेन्द्रिय १४ प्रकृतियां जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और छह प्रकृतियां जघन्य अन्तः कोटि कोटि सागरोपम (एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम से कुछ कम) को बांधता है और उत्कृष्ट तीस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अवाधा काल तीन हजार वर्ष का है।

(२१)–सातावेदनीय के दो भेद–साम्परायिक और ईर्या-पथिक। ईर्यापथिक सातावेदनीय की स्थिति दो समय की है। साम्परायिक सातावेदनीय की समुच्चय जीव की अपेक्षा जघन्य १२ मुहूर्त उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि कोटि सागरोपम की स्थिति है, अवाधा काल १५०० वर्षो का है। एकेन्द्रिय के सातावेदनीय की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी $\frac{3}{14}$ सागरोपम की उत्कृष्ट $\frac{3}{14}$ सागरो-पम की। द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति २५ सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी $\frac{75}{14}$ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय की ५० सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी $\frac{150}{14}$ सागरोपम को, चतुरिन्द्रिय की १०० सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी $\frac{300}{14}$ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय की एक हजार सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी $\frac{3000}{14}$ सागरोपम की है। इनकी जघन्य स्थिति अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम है। संज्ञी पंचेन्द्रिय साता-

को, संज्वलन मान जघन्य एक महिने का, संज्वलन माया जघन्य पन्द्रह दिन की और सज्वलन लोभ जघन्य अन्तर्मुहूर्त का बांधता है । उत्कृष्ट सोलह प्रकृतियां चालीस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल चार हजार वर्षों का है ।

समुच्चय जीव हास्य, रति – ये दो प्रकृतियां जघन्य सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{१}{७}$ सागरोपम की और पुरुषवेद जघन्य आठ वर्ष की बांधता है । उत्कृष्ट तीनों प्रकृतियां दस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल एक हजार वर्ष का है । एकेन्द्रिय ये तीनों प्रकृतियां उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{३}{७}$ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय पचीस सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{२५}{७}$ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{५०}{७}$ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{१००}{७}$ सागरोपम की और असंज्ञी पचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{१०००}{७}$ सागरोपम को बांधते हैं । जघन्य सभी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय हास्य और रति जघन्य अन्तः कोटि कोटि सागरोपम की और पुरुष वेद जघन्य आठ वर्ष का बांधता है, उत्कृष्ट तीनों ही प्रकृतियां दस कोटि कोटि सागरोपम को बांधता है, अबाधा काल हजार वर्ष का है ।

भाग यानी १५०/१४ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३००/१४ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३०००/१४ सागरोपम की बांधते हैं। जघन्य स्थिति सभी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय स्त्री वेद की प्रकृति जघन्य अन्त: कोटि कोटि सागरोपम की उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल १५०० वर्षों का है।

समुच्चय जीव मिथ्यात्व मोहनीय जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम की उत्कृष्ट ७० कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल सात हजार वर्षों का है। एकेन्द्रिय मिथ्यात्व मोहनीय प्रकृति उत्कृष्ट एक सागरोपम की, द्वीन्द्रिय पचीस सागरोपम की, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम की बांधते हैं। जघन्य सभी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम बांधते हैं। संज्ञी पचेन्द्रिय मिथ्यात्व मोहनीय प्रकृति जघन्य अन्त: कोटि कोटि सागरोपम की उत्कृष्ट ७० कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल सात हजार वर्षों का है। मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय का बंध नहीं होता। मिश्र मोहनीय की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तमुंहूर्त की है। सम्यक्त्व मोहनीय की स्थिति जघन्द अन्तमुंहूर्त उत्कृष्ट ६६ सागरोपम से कुछ अधिक की है।

(५०-५३)-आयु कर्म की चार प्रकृतियां हैं। नैरयिक नरक और देवता की आयु नहीं बांधता, मनुष्य और तिर्यंच की आयु बांधता है। मनुष्यायु बांधता है तो जघन्य प्रत्येक मास छह मास अधिक, उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व छह मास अधिक की बांधता है। तिर्यंचायु बांधता है तो जघन्य छह मास अन्तर्मुहूर्त अधिक उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व छह मास अधिक की बांधता है। इसी तरह देवता का कहना। तिर्यंच नरकायु बांधता है तो जघन्य दस हजार वर्ष अन्तर्मुहूर्त अधिक उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। तिर्यंच तिर्यंचायु और मनुष्यायु बांधता है तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। तिर्यंच देवायु बांधता है तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट अठारह सागरोपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। मनुष्य यदि नरकायु और देवायु बांधता है तो जघन्य प्रत्येक मास अधिक दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। मनुष्य यदि मनुष्यायु और तिर्यंचायु बांधता है तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है।

(५४-१५८)-नाम कर्म की १३ और गोत्र कर्म की २ प्रकृतियों का बंध। नरक गति, नरकानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क (वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, वैक्रिय बंधन, वैक्रिय संघात)

ये छह प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के सातिया दो भाग यानी २०००/७ सागरोपम की उत्कृष्ट वीस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अवाधा काल दो हजार वर्षों का है । एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव ये छह प्रकृतियां नहीं बांधते। असंज्ञी पंचेन्द्रिय ये छह प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के सातिया दो भाग यानी २०००/७ सागरोपम की उत्कृष्ट पूरे २०००/७ सागरोपम की बांधता है । संज्ञी पंचेन्द्रिय ये छह प्रकृतियां जघन्य अन्तः कोटि कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट वीस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल दो हजार वर्षों का है । देवगति देवानुपूर्वी ये दो प्रकृतियां समुच्चय जीव बांधता है तो जघन्य पल्योपम के असख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १०००/७ सागरोपम की उत्कृष्ट दस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल हजार वर्षों का है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ये दो प्रकृतियां नहीं बांधते। असज्ञी पंचेन्द्रिय ये दोनों प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १०००/७ सागरोपम की उत्कृष्ट पूरे १०००/७ सागरोपम की बांधता है । संज्ञी पंचेन्द्रिय ये दोनों प्रकृतिया जघन्य अन्तः कोटि कोटि सागरोपम की उत्कृष्ट दस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल हजार वर्ष का है ।

[illegible] सागरोपम की, त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी [illegible] सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी [illegible] सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी [illegible] सागरोपम की बांधते हैं और जघन्य अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम को बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये चारों प्रकृतियां जघन्य अंतः कोटि कोटि सागरोपम की उत्कृष्ट अठारह कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल अठारह सौ वर्षों का है।

चार शुभ स्पर्श (कोमल, लघु, उष्ण, स्निग्ध) और सुरभिगंध ये पांच प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{१}{७}$ सागरोपम की उत्कृष्ट दस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल एक हजार वर्षों का है। ये पांच प्रकृतियां एकेन्द्रिय उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{१}{७}$ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय पचीस सागरोपम के सातिया एक भाग यानी [illegible] सागरोपम की, त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम के सातिया एक भाग यानी [illegible] सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के सातिया एक भाग यानी [illegible] सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी [illegible] सागरोपम की बांधते हैं और जघन्य अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम को बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पांचों

उत्कृष्ट सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की, द्वीन्द्रिय पचीस सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के अठाई-सिया चार भाग यावत् आठ भाग की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की बांधते हैं और जघन्य अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं । संज्ञी पंचे-न्द्रिय ये दस प्रकृतियां जघन्य अंतः कोटि कोटि सागरोपम की

अबाधा काल हजार वर्षों का है । मनुष्यगत और पीला वर्ण और खट्टा रस ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया पांच भाग की उत्कृष्ट साढ़े बारह कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा साढ़े बारह सौ वर्षों का है । मनुष्यगत और लाल वर्ण और कषैला रस — ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग सागरोपम के अठाईसिया छह भाग की उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है अबाधा पन्द्रह सौ वर्षों का है । मनुष्यगत और नीला वर्ण और कड़वा रस — ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया सात भाग की उत्कृष्ट साढ़े सत्रह कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा साढ़े सत्रह सौ वर्षों का है । मनुष्यगत और काला वर्ण और तीखा रस — ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया आठ भाग की उत्कृष्ट बीस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल दो हजार वर्षों का है ।

उत्कृष्ट दस कोटि कोटि सागरोपम की, १२१/२ कोटि कोटि साग-रोपम की १५ कोटि कोटि सागरोपम की, १७१/२ कोटि कोटि सागरोपम की ग्रौर बीस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है। अबाधा काल क्रमशः हजार वर्षों का, १२५० वर्षों का, १५०० वर्षों का, १७५० वर्षों का ग्रौर दो हजार वर्षों का है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय की दस प्रकृतियों की उपरोक्त स्थिति भी पश्चानुपूर्वी से समझनी चाहिये।

छह सहनन ग्रौर छह संस्थान ये बारह प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के ग्रसंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग, छह भाग, सात भाग, ग्राठ भाग, नौ भाग ग्रौर दस भाग यानी ५/३५, ६/३५, ७/३५, ८/३५, ९/३५, १०/३५ साग-रोपम की उत्कृष्ट १०, १२, १४, १६, १८ ग्रौर २० कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल १०००, १२००, १४०० १६००, १८०० ग्रौर २००० वर्षों का है। ये बारह प्रकृतियां एकेन्द्रिय उत्कृष्ट सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग, छह भाग, सात भाग, आठ भाग, नौ भाग, ग्रौर दस भाग की, द्वीन्द्रिय पचीस सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग यावत् दस भाग, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग यावत् दस भाग की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग यावत् दस भाग की और ग्रसंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग यावत् दस भाग की बांधते हैं। जघन्य सब में अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम

के असंख्यातवें भाग कम की है। संज्ञी पंचेन्द्रिय से बारह प्रकृतियां जघन्य अंतः कोटि कोटि सागरोपम की उत्कृष्ट दस, बारह, चौदह, सोलह, अठारह और बीस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल १०००, १२००, १४००, १६००, १८०० और २००० वर्षों का है।

सूक्ष्म त्रिक (सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त) के सिवाय स्थावर दशक की सात प्रकृतियां (स्थावर अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति) त्रस नाम के सिवाय सात प्रत्येक प्रकृतियां (पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरु लघु, निर्माण, उपघात), त्रस दशक में से चार प्रकृतियां (त्रस नाम, बादर नाम, प्रत्येक नाम, पर्याप्त नाम). नीच गोत्र और अशुभ विहायोगति—ये बीस प्रकृतियां तिर्यंच गति की तरह सागरोपम के सातिया दो भाग उत्कृष्ट २० कोटि कोटि सागरोपम से कहना।

त्रस दशक की छह प्रकृतियां (स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्ति), उच्च गोत्र और शुभ विहायोगति— इन आठ प्रकृतियों में से यशःकीर्ति और उच्चगोत्र— ये दो प्रकृतियां मुहूर्त और जघन्य आठ मुहूर्त की और शेष छह प्रकृतियां सागरोपम और जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया एक भाग की बांधी है। सागरोपम की अबाधा है, उत्कृष्ट सभी प्रकृतियां दस कोटि कोटि साग-

रोपम की बांधता है, अबाधा काल एक हजार वर्षों का है। ये आठों प्रकृतियां एकेन्द्रिय उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया एक भाग की यानी $\frac{1}{7}$ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय २५ सागरोपम के सातिया एक भाग की यानी $\frac{25}{7}$ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{50}{7}$ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय १०० सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{100}{7}$ सागरोपम की, असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी $\frac{1000}{7}$ सागरोपम की बांधते हैं, जघन्य उक्त उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। सज्ञी पंचेन्द्रिय यशः कीर्ति और उच्च गोत्र जघन्य आठ मुहूर्त की और शेष छह प्रकृतियां जघन्य अन्तः कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है तथा आठों प्रकृतियां उत्कृष्ट दस कोटि कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधा काल एक हजार वर्षों का है।

कर्म बांधते हुए बांधने का थोकड़ा

[पन्नवणा सूत्र २४ वां पद]

इस थोकड़े में यह बताया जायगा कि एक कर्म प्रकृति को बांधता हुआ जीव दूसरी कितनी कर्म प्रकृतिया बांधता है।

प्रश्न— समुच्चय एक जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियां बांधता है ? उत्तर— समुच्चय एक जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधता हुआ सात, आठ अथवा

छह कर्म प्रकृतियां बांधता है । इसी तरह मनुष्य भी ज्ञाना-वरणीय कर्म बांधता हुआ ७, ८, अथवा ६ कर्म प्रकृतियां बांधता है । शेष नरकादि २३ दण्डक वाले ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए सात अथवा आठ कर्म बांधते हैं । समुच्चय बहुत से जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए सात, आठ अथवा छह कर्म बांधते हैं । सात आठ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और छह कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं । इनके तीन भंग होते हैं— १. सभी सात आठ कर्म बांधने वाले, २. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ३. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत । बहुत से नैरयिक ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए सात अथवा आठ कर्म बांधते हैं । सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं । इनके तीन भंग होते हैं—१. सभी सात कर्म बांधने वाले, २. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, ३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत । इसी तरह [illegible] विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक और देवता के १३ दंडक = १७ दंडक कहना । १७×३ = ५१ भंग हुए । पांच स्थावर के बहुत से जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं । बहुत से मनुष्य ज्ञानावरण-ीय कर्म बांधते हुए सात, आठ अथवा छह कर्म प्रकृति बांधते हैं । सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, आठ और छह

कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं । इनके नो भंग होते है— असंयोगी १, दो संयोगी ४ और तीन संयोगी ४ । १ सभी सात कर्म बांधने वाले, २. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, ३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत ४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ५. सात कर्म बांधने वाले बहुत छह कर्म बांधने वाले बहुत, ६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक. ७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ८. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ९. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत ।

समुच्चय जीव के तीन भंग, १८ दंडक के चोपन भंग और मनुष्य के नो भंग इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के ६६ भग होते हैं । ज्ञानावरणीय कर्म की तरह दर्शनावरणीय कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म और अन्तराय कर्म कहना । ६६×५ =३३० भंग हुए।

प्रश्न— समुच्चय एक जीव वेदनीय कर्म बांधता हुआ कितने कर्म बांधता है ? उत्तर—समुच्चय एक जीव वेदनीय कर्म बांधता हुआ सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधता है । इसी तरह एक मनुष्य का कहना । शेष २३ दंडक का एक एक जीव वेदनीय कर्म बांधता हुआ सात या आठ कर्म

कर्म बांधते हुए वेदने का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र २५ वां पद)

इस थोकड़े में यह बताया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि एक एक प्रकृति बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियां वेदता है।

प्रश्न — समुच्चय एक जीव व समुच्चय बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियां वेदते हैं? उत्तर— आठों ही कर्म प्रकृतियां वेदते हैं। समुच्चय जीव की तरह नैरयिक आदि चौबीस दंडक कहना। वेदनीय के सिवाय शेष छह कर्म भी ज्ञानावरणीय की तरह कहना।

प्रश्न— समुच्चय एक जीव वेदनीय कर्म बांधता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियां वेदता है? उत्तर— आठ, सात या चार कर्म प्रकृतियां वेदता है। इसी तरह मनुष्य का दण्डक कहना। नैरयिक आदि २३ दण्डक के एक एक जीव वेदनीय कर्म बांधते हुए आठों ही कर्म वेदते हैं। समुच्चय बहुत जीव वेदनीय कर्म बांधते हुए आठ, सात अथवा चार कर्म प्रकृतियां वेदते हैं। आठ और चार कर्म प्रकृतियां वेदने वाले शाश्वत हैं और सात कर्म प्रकृतियां वेदने वाले अशाश्वत हैं। इसके तीन भंग होते हैं— १. सभी आठ व चार कर्म वेदने वाले, २. आठ व चार कर्म वेदने वाले बहुत, सात कर्म वेदने वाला एक, ३. आठ व चार कर्म वेदने वाले बहुत, सात

बांधने वाले बहुत, ४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, ७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत। (तीन संयोगी ३११,* ३१३, ३३१, ३३३) ८. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, ९. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, १०. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ११. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, १२. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, १३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, १४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, १५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, १६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, १७ सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक

* जहां ३ का अंक है वहां बहुत और १ का अंक है वहां एक कहना।

वांधने वाले वहुत, ४. सात कर्म वांधने वाले वहुत, छह कर्म वांधने वाला एक, ५. सात कर्म वांधने वाले वहुत, छह कर्म वांधने वाले वहुत, ६. सात कर्म वांधने वाले वहुत, एक कर्म वांधने वाला एक, ७. सात कर्म वांधने वाले वहुत, एक कर्म वांधने वाले वहुत। (तीन संयोगी ३११,* ३१३, ३३१, ३३३) ८. सात कर्म वांधने वाले वहुत, आठ कर्म वांधने वाला एक, छह कर्म वांधने वाला एक, ९. सात कर्म वांधने वाले वहुत, आठ कर्म वांधने वाला एक, छह कर्म वांधने वाले वहुत, १०. सात कर्म वांधने वाले वहुत, आठ कर्म वांधने वाले वहुत, छह कर्म वांधने वाला एक, ११. सात कर्म वांधने वाले वहुत, आठ कर्म वांधने वाले बहुत, छह कर्म वांधने वाले वहुत, १२. सात कर्म वांधने वाले वहुत, आठ कर्म वांधने वाला एक, एक कर्म वांधने वाला एक, १३. सात कर्म वाधने वाले बहुत, आठ कर्म वांधने वाला एक, एक कर्म वांधने वाले वहुत, १४. सात कर्म वांधने वाले वहुत, आठ कर्म वांधने वाले बहुत, एक कर्म वांधने वाला एक, १५. सात कर्म वांधने वाले बहुत, आठ कर्म वांधने वाले वहुत, एक कर्म वांधने वाले वहुत, १६. सात कर्म वांधने वाले बहुत, छह कर्म वांधने वाला एक, एक कर्म वांधने वाला एक, १७ सात कर्म वांधने वाले बहुत, छह कर्म वांधने वाला एक, एक

* जहां ३ का अंक है वहां बहुत और १ का अंक है वहां एक कहना।

भंग हुए।

ज्ञानावरणीय कर्म की तरह दर्शनावरणीय और अन्त-राय कर्म कहना। ९०+९०=१८० भंग हुए।

समुच्चय एक जीव वेदनीय कर्म वेदता हुआ सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधता है अथवा अवन्ध यानी कोई कर्म नहीं बांधता। इसी तरह मनुष्य कहना। शेष नैरयिक आदि २३ दंडक का एक एक जीव वेदनीय कर्म वेदता हुआ सात या आठ कर्म बांधता है। समुच्चय बहुत जीव वेदनीय कर्म वेदते हुए सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधते हैं या अवन्ध होते हैं। इनमें सात, आठ, और एक कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, छह कर्म बांधने वाले और अवन्ध अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते हैं– असयोगी एक, दो संयोगी चार, तीन संयोगी चार १. सभी सात, आठ और एक कर्म बांधने वाले, २. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाल एक, ३. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कम बांधने वाले बहुत, ४. सात आठ व एक कर्म बांधने वा बहुत, अवन्ध एक, ५. सात आठ व एक कर्म बांधने वा बहुत, अवन्ध बहुत, ६. सात आठ व एक कर्म बांधने वा बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, अवन्ध एक, ७. सा आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांध वाला एक, अवन्ध बहुत, ८. सात आठ व एक कर्म बांध वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, अवन्ध एक,

करते हैं । तीन विकलेन्द्रिय में भी दोनों प्रकार के आहार को इच्छा होती है। अनाभोग निर्वत्तित आहार की इच्छा प्रति समय निरन्तर होती है और आभोग निवत्तित आहार की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त से होती है । तिर्यंच पंचेन्द्रिय में भी दोनों प्रकार के आहार की इच्छा होती है , अनाभोग निर्वत्तित आहार की प्रति समय और आभोग निवत्तित आहार की जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट दो दिन से होती है । मनुष्य में भी अनाभोग निवत्तित आहार की इच्छा प्रति समय होती है और आभोग निवत्तित आहार की जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन दिन से होती है।

(४) किन पुद्गलों का आहार करते हैं ?—नैरयिक किन पुद्गलों का आहार करते हैं ? उत्तर— नैरयिक द्रव्य से अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धों का, क्षेत्र से असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाढ़ का, काल से एक समय, दो समय, तीन समय यावत् दस समय, संख्यात समय और असंख्यात समय की स्थिति का और भाव से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं । वर्ण की अपेक्षा पांचों वर्ण वाले, गन्ध की अपेक्षा दोनों गन्ध वाले, रस की अपेक्षा पांचों रस वाले और स्पर्श की अपेक्षा आठों स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं । वर्ण से काले वर्ण के लेते हैं तो एक गुण काले वर्ण के, दो गुण काले वर्ण के, तीन गुण काले वर्ण के यावत दस गुण काले वर्ण के, संख्यात गुण काले वर्ण के,

संख्यात गुण काले वर्ण के और अनन्त गुण काले वर्ण के पुद्गलों का आहार करते हैं। काले वर्ण की तरह शेष चार वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श के भी कह देना। इस तरह वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श के २०×१३=२६० बोल हुए। स्पृष्ट, अनन्तरावगाढ़, सूक्ष्म, बादर ऊंचे, नीचे, तिर्छे, आदि, मध्य, अन्त, स्व विषय (यथोचित आहार योग्य) आनुपूर्वी और नियमपूर्वक छहों दिशा से ग्रहण करते हैं। द्रव्य का एक, क्षेत्र का एक, काल के बारह और भाव के २६० और स्पृष्ट आदि १४ बोल, ये सब मिलाकर २८८ बोल (१+१+१२+२६०+१४=२८८) हुए।

नैरयिक अधिकतर अशुभ वर्ण (काले, नीले), अशुभ गन्ध (दुरभि गन्ध वाले), अशुभ रस (तीखे, कड़वे) और अशुभ स्पर्श (कर्कश, गुरु, शीत, रूक्ष) वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। उन ग्रहण किये हुए पुद्गलों के पुराने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का नाश करके दूसरे अपूर्व अशुभ वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श उत्पन्न करके फिर ग्रहण किये हुए पुद्गलों का आहार करते हैं। अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनोभिराम, अनभि-लषित, अनभिध्यित, गुरु और दुःखरूप से परिणत करके उन्हें शरीर क्षेत्र में रहे हुए पुद्गलों का सभी आत्म प्रदेशों से आहार करते हैं। इसी तरह देवता के १३ दण्डक में भी उपरोक्त २८८ बोल का आहार किया जाता है। किन्तु देवता अधिकतर शुभ वर्ण (पीले, सफेद), शुभ गन्ध (सुरभिगन्ध), शुभ रस (खट्टे, मीठे)

और शुभ स्पर्श (कोमल, लघु, स्निग्ध, उष्ण) वाले पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। ग्रहण किये हुए पुद्गलों के पुराने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का नाश करके और दूसरे अपूर्व शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श उत्पन्न करके तथा उन्हें इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ, तृप्तिकर, अभीप्सित, अभिलषणीय, लघु और सुख रूप से परिणत करके अपने शरीर क्षेत्र में रहे हुए पुद्गलों का सभी आत्म प्रदेशों से आहार करते हैं।

पृथ्वीकाय आदि औदारिक के दस दण्डक वर्णादिक २० बोल के पुद्गलों को ग्रहण करके, यदि वे शुभ हों तो उन्हें अशुभ करके और यदि वे अशुभ हों तो उन्हें शुभ करके अपने शरीर क्षेत्र में रहे हुए उक्त २८८ बोल के पुद्गलों को सभी आत्म प्रदेशों से ग्रहण कर आहार करते हैं। किन्तु पांच स्थावर व्याघात और निर्व्याघात से आहार लेते हैं। जब व्याघात से आहार लेते हैं तो कभी तीन दिशा का कभी चार दिशा का और कभी पांच दिशा का आहार ग्रहण करते हैं। निर्व्याघात से वे छहों दिशा का आहार लेते हैं २५×२८८=७२०० ।

(५) क्या सभी आत्म प्रदेशों से आहार करते हैं क्या नैरयिक सभी आत्म प्रदेशों से— १. आहार लेते हैं, परिणमाते हैं यानी पचाते हैं, ३. उच्छ्वास लेते हैं, ४. निःश्वा छोड़ते हैं, ५. पर्याप्त की अपेक्षा बार बार आहार लेते हैं, बार बार पचाते हैं, ७. बार बार उच्छ्वास लेते हैं, ८. बा

रूप में ग्रहण किये हुए समझना । क्या नैरयिक आहार रूप में ग्रहण किये हुए सभी पुद्गलों का आहार करते हैं या सभी का आहार नहीं करते ? उत्तर– नैरयिक जो पुद्गल आहार रूप में ग्रहण करते हैं उन सभी का आहार करते हैं कोई भी पुद्गल आहार करने से बचते नहीं हैं । नैरयिक की तरह, देवता के तेरह दण्डक और पांच स्थावर के पांच दण्डक अठारह दण्डक कहना । तीन विकलेन्द्रिय में दो प्रकार का आहार होता है – लोमाहार और प्रक्षेपाहार । लोमाहार रूप से ये जिन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं उन सभी का विना कुछ छोड़े, आहार करते हैं । द्वीन्द्रिय प्रक्षेपाहार में ग्रहण किये हुए पुद्गलों में से असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और वहुत से असंख्यात भाग विना स्पर्श किये, विना स्वाद लिये ही नष्ट हो जाते हैं । इसी तरह त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय भी कहना किन्तु इनमें वहुत से असंख्यात भाग का विना स्पर्श किये, विना स्वाद लिये और विना गन्ध लिये ही नष्ट हो जाता है । तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य त्रीन्द्रिय की तरह कहना । द्वीन्द्रिय में अनास्वादित (विना स्वाद लिये) पुद्गल सब से थोड़े, अस्पृष्ट (विना स्पर्श किये हुए) पुद्गल अनन्त गुणा । त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में विना गन्ध लिये हुए पुद्गल सब से थोड़े, अनास्वादित पुद्गल अनन्त गुणा और अस्पृष्ट पुद्गल अनन्त गुणा ।

(८) आहार परिणाम अर्थात् आहार किस रूप में परिणत

अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष दण्डक में तीन भग कहना । समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में बहुत जीव की अपेक्षा भग नहीं होता – वे आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं । तेजो लेश्या वाले समुच्चय जीव और १८ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होते हैं कभी अनाहारक होते हैं । बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और असुरकुमार आदि १५ दण्डक में तीन भग कहना । पृथ्वी पानी वनस्पति में छह भंग (संज्ञीद्वार में कहे अनुसार) कहना । पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या वाले समुच्चय जीव और तीन दण्डक (तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और वैमानिक) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा इनमें तीन भंग कहना । अलेश्य समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं ।

(५) दृष्टि द्वार– सम्यग्दृष्टि समुच्चय जीव और १६ दण्डक (पांच स्थावर छोड़ कर) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि समुच्चय जीव और १६ दण्डक में तीन भंग कहना और विकलेन्द्रिय में छह भग कहना । सिद्ध भगवान् एक की अपेक्षा और बहुत की अपेक्षा अनाहारक होते हैं । मिथ्या दृष्टि समुच्चय जीव और चोवीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है ।

एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १६ दण्डक में तीन भंग क.ना । क्रोध कषायी समुच्चय जीव और २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अना- हारक भी होते हैं। देवता के तेरह दण्डक में छह भंग कहना, शेष छह दण्डक में तीन भंग कहना । मान कषायी और माया कषायी समुच्चय जीव और २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा नैरयिक और देवता में छह भंग कहना, समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष पांच दण्डक में तीन भंग कहना । लोभ कषायी समुच्चय जीव और २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, नैरयिक में छह भंग कहना और शेष १८ दण्डक में तीन भंग कहना। अकषायी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, मनुष्य में तीन भंग कहना । सिद्ध भगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक

हैं, मनुष्य में तीन भंग कहना। सिद्ध भगवान् एक जीव और वहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं। समुच्चय अज्ञानी, मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी समुच्चय जीव और चोवीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, वहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १९ दण्डक में तीन भग कहना। विभंगज्ञानी समुच्चय जीव और १४ दण्डल (नैरयिक और देवता के) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है और वहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और १४ दण्डक में तीन भग कहना। विभंगज्ञानी तिर्यंच और मनुष्य एक जीव और वहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं।

(६) योग द्वार—सयोगी समुच्चय जीव और चोवीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है कभी अनाहारक होता है। वहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। काययोगी भी इसी तरह कहना। मनयोगी समुच्चय जीव और १६ दण्डक तथा वचनयोगी समुच्चय जीव और १९ दण्डक एक जीव और वहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। अयोगी समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध एक जीव और वहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं और मनुष्य में तीन भंग कहना । सिद्ध भगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

(१२) शरीर द्वार— सशरीरी समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। औदारिक शरीरी समुच्चय जीव और ९ दण्डक (मनुष्य के सिवाय) एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना। वैक्रिय शरीरी समुच्चय जीव और १७ दण्डक तथा आहारक शरीरी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। तैजस शरीरी कार्मण शरीरी समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं तथा शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। अशरीरी समुच्चय जीव, सिद्ध भगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक

शरीर पर्याप्ति अपर्याप्त, इन्द्रिय पर्याप्ति अपर्याप्त, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति अपर्याप्त, समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा नैरयिक देव और मनुष्य में छह भंग कहना, समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष चार दण्डक में तीन भंग कहना, समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं । भाषा मनः पर्याप्ति अपर्याप्त समुच्चय जीव और १६ दण्डक (पंचेन्द्रिय के) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और तिर्यंच पचेन्द्रिय में तीन भंग कहना तथा नैरयिक देव और मनुष्य में छह भंग कहना ।
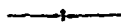
उपयोग का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र २९ वां पद)

उपयोग के दो भेद— साकार उपयोग और अनाकार उपयोग । साकार उपयोग आठ प्रकार का है— पांच ज्ञान और तीन अज्ञान । पांच ज्ञान— मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान । तीन अज्ञान-मति अज्ञान,

पश्यत्ता (पासणया) का थोकड़ा

[पन्नवणा सूत्र ३० वां पद]

'पश्यत्ता' शब्द दृशिर्—देखना धातु से बना है किन्तु रूढिवश 'पश्यत्ता' शब्द यहाँ साकार अनाकार ज्ञान का प्रतिपादक है । पश्यत्ता के दो भेद- साकार पश्यत्ता और अनाकार पश्यत्ता । साकार पश्यत्ता- त्रैकालिक यानी तीनों काल विषयक ज्ञान साकार पश्यत्ता है और स्पष्ट रूप से देखना अनाकार पश्यत्ता है । साकार पश्यत्ता के छह भेद- श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, केवल ज्ञान और श्रुत अज्ञान, विभग ज्ञान । अनाकार पश्यत्ता के तीन भेद- चक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन । समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक में दोनों- साकार पश्यत्ता और अनाकार पश्यत्ता पाई जाती है । समुच्चय जीव में साकार पश्यत्ता के छहों भेद और अनाकार पश्यत्ता के तीनों भेद पाये जाते हैं । नैरयिक, देवता और तिर्यंच पचेन्द्रिय में साकार पश्यत्ता के चार भेद- श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान पाये जाते हैं और अनाकार पश्यत्ता के दो भेद- चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन पाये जाते हैं । पांच स्थावर में साकार पश्यत्ता का एक भेद श्रुत अज्ञान पाता है । द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय में साकार पश्यत्ता के दो भेद-श्रुत ज्ञान और श्रुत अज्ञान पाते हैं । चतुरिन्द्रिय में साकार पश्यत्ता के दो भेद- श्रुत ज्ञान

नाम	जघन्य विषय	उत्कृष्ट विषय
३. वालुका प्रभा	ढाई कोश	तीन कोश
४. पक प्रभा	दो कोश	ढाई कोश
५. धूम प्रभा	डेढ़ कोश	दो कोश
६. तमः प्रभा	एक कोश	डेढ़ कोश
७. तमस्तमः प्रभा	आधा कोश	एक कोश

असुरकुमार देवता × के अवधिज्ञान का विषय जघन्य पचीस योजन उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र है। इतना विशेष जानना कि पल्योपम की आयु वाले असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का विषय सख्यात द्वीप समुद्र है और सागरोपम की आयु वाले असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का विषय असंख्यात द्वीप समुद्र है। नागकुमार आदि नव निकाय × के देवों और व्यतर देवों × के अवधिज्ञान का विषय जघन्य २५ योजन उत्कृष्ट संख्यात द्वीप समुद्र है।

तिर्यंच पचेन्द्रिय के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र है। मनुष्य के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट संपूर्ण लोक है तथा अलोक में लोक प्रमाण असंख्यात

× भवनपति और वाणव्यंतर देवों में अवधिज्ञान का जघन्य पचीस योजन कहा है सो दस हजार वर्ष की स्थिति वाले असुरकुमार देवों की अपेक्षा समझना।

मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं? उत्तर— हां, नैरयिक सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं। नैरयिक की तरह देवता के १३ दण्डक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य भी सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं।

(६) परिचारणा द्वार— १ क्या देवता सदेवी (देवी सहित) और सपरिचार (परिचारणा सहित) होते हैं? या २. सदेवी और अपरिचार (परिचारणा रहित) होते हैं? या ३. अदेवी और सपरिचार होते हैं? या ४. अदेवी और अपरिचार होते हैं? उत्तर—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के देवता सदेवी और सपरिचार होते हैं। तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक के देवता अदेवी सपरिचार होते हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवता अदेवी अपरिचार होते हैं।

(७) काय, स्पर्श, रूप, शब्द और मन सम्बन्धी परिचारणा और अपरिचारणा द्वार— परिचारणा (मैथुन सेवन) पांच प्रकार की होती है- १. काया की परिचारणा, २. स्पर्श की परिचारणा, ३. रूप की परिचारणा, ४. शब्द की परिचारणा और ५. मन की परिचारणा।

भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक

होती हैं और देवों के न समीप और न दूर रहकर अपना रूप दिखाती हैं । रूप परिचारणा में परस्पर सविलास दृष्टिविक्षेप अंग प्रत्यग प्रदर्शनादि द्वारा तृप्ति अनुभव करते हैं । शब्द परिचारणा में भी देवियां देवता के स्थान पर आकर देवों के न समीप न दूर रह कर मधुर मन में आनन्द उत्पन्न करने वाले अनुपम उच्च-नीच शब्द बोलती हैं तब देवता देवियों के साथ शब्द परिचारणा करते हैं । मन परिचारणा वाले देवों के मन में जब मन परिचारणा की इच्छा होती है तो देवियां उनकी इच्छा जान कर यावत् उत्तर वंक्रिय का अपने स्थान पर ही परम सन्तोपजनक अनुपम उच्च-नीच मनोभाव धारण किये रहती हैं तब देवता उन देवियों के साथ मन परिचारणा करते हैं ।

अल्प बहुत— १. सब से थोड़ा देवता परिचारणा नहीं करने वाले, २. मन परिचारणा करने वाले देवता संख्यात गुणा, ३. शब्द परिचारणा वाले देवता असंख्यात गुणा, ४. रूप परिचारणा करने वाले देवता असख्यात गुणा, ५. स्पर्श परिचारणा करने वाले देवता असंख्यात गुणा, ६. काय परिचारणा करने वाले देवता असंख्यात गुणा ।

(३) प्राप्ति द्वार—समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक में प्रत्येक चारों कषाय समुद्घात पाई जाती हैं।

(४) एक जीव की अपेक्षा अतीत और अनागत काल की चारों कषाय समुद्घात– एअ एक नैरयिक ने चारों कषाय समुद्घात अतीत काल में अनन्त की और अनागत काल में कोई करेगा कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात अनन्त करेगा। नैरयिक की तरह शेष २३ दण्डक कह देना।

(५) बहुत जीव की अपेक्षा अतीत और अनागत काल की चारों कषाय समुद्घात-बहुत नैरयिकों ने चारों कषाय समुद्घात अतीत काल में अनन्त की और अनागत काल में अनन्त करेंगे। नैरयिक की तरह शेष २३ दण्डक कह देना।

(६) एक जीव में परस्पर पाई जाने वाली अतीत अनागत काल की चारों कषाय समुद्घात– एक एक नैरयिक ने नैरयिक रूप में क्रोध समुद्घात, मान समुद्घात, माया समुद्घात अतीत काल में अनन्त की, अनागत काल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात अनन्त करेगा। इसी तरह तेईस दण्डक कहना। एक एक नैरयिक ने नैरयिक रूप में और औदारिक के दस दण्डक रूप में लोभ समुद्घात अतीत काल में अनन्त की और अनागत काल में कोई करेगा कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात अनन्त करेगा।

पति व्यन्तर रूप में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असख्यात, कदाचित् अनन्त करेगा और ज्योतिषी वैमानिक रूप में कदाचित् असंख्यात, कदाचित् अनन्त करेगा ।

(७) वहुत जीवों में परस्पर पाई जाने वाली अतीत अनागत काल की चारों कपाय समुद्घात— वहुत चौवीस दण्डक के जीवों ने चौवीस दण्डक रूप में चारों कपाय समुद्-घात अतीत काल में अनन्त की और अनागत काल में अनन्त करेंगे ।

(८) अल्पवहुत्व द्वार— समुच्चय जीव में- १. सव से थोड़े अकपाय समुद्घात यानी कपाय से भिन्न समुद्घात करने वाले, २. मान समुद्घात करने वाले अनन्त गुणा, ३. क्रोध समुद्घात करने वाले विशेपाधिक, ४, माया समुद्घात करने वाले विशेपाधिक, ५. लोभ समुद्घात करने वाले विशेपाधिक, ६. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यात गुणा ।

नैरयिकों में— १. सव से थोड़े लोभ समुद्घात करने वाले, २. माया समुद्घात करने वाले संख्यात गुणा, ३ मान समुद्घात करने वाले संख्यात गुणा, ४. क्रोध समुद्घात करने वाले संख्यात गुणा, ५. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यात गुणा ।

तेरह दण्डक देवता में— १. सव से थोड़े क्रोध समुद्-घात करने वाले, २. मान समुद्घात करने वाले संख्यात गुणा, ३. माया समुद्घात करने वाले संख्यात गुणा, ४. लोभ

घात, ४. वैक्रिय समुद्घात, ५. तैजस समुद्घात, ६. आहारक समुद्घात ।

(२) प्राप्ति द्वार— नैरयिक में पहली चार समुद्घात, देवता के तेरह दण्डक में पहली पांच समुद्घात चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में पहली तीन समुद्घात वायुकाय में पहली चार समुद्घात, तिर्यंच पचेन्द्रिय में पहली पांच समुद्घात और मनुष्य में छहों समुद्घात पाई जाती हैं ।

(३) काल द्वार—छहों समुद्घात का काल जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है ।

वेदना समुद्घात करने वाला जीव वेदना समुद्घात द्वारा जिन पुद्गलों को अपने शरीर से बाहर निकालता है उनसे छहों दिशा में शरीर प्रमाण लम्बा चौड़ा मोटा क्षेत्र आपूरित (व्याप्त) एव स्पृष्ट होता है । ये पुद्गल शेष क्षेत्र स्पर्श नहीं करते । * एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से जीव उक्त क्षेत्र को आपूरित एव स्पृष्ट करता है । प्रश्न— वेदना समुद्घात द्वारा कितने काल तक

---

* वेदना समुद्घात करने वाला १—२—३ समय प्रमाण काल स्पर्शता है, शेष काल नहीं स्पर्शता अर्थात् वेदना समुद्घात का काल अन्तर्मुहूर्त का है किन्तु कृत काल १—२—३ समय का है । वेदना समुद्घात करने के बाद वे पुद्गल शरीर में अन्तर्मुहूर्त तक रहते है बाद में शरीर से अलग होते है । ऐसा थोकड़े के जानकार कहते है । तत्व केवली गम्य ।

लगती हैं। जैसे एक पुरुष को विच्छू सर्प आदि ने काट खाया और इस कारण पुरुष ने वेदना समुद्घात की तो विच्छू सर्प आदि को भी कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं । वेदना समुद्घात करने वाला जीव और वेदना समुद्घात के पुद्गलों से स्पृष्ट जीव द्वारा परम्परा से अन्य जीवों की घात होती है उससे वेदना समुद्घात करने वाले जीव को तथा वेदना समुद्घात के पुद्गलों से स्पृष्ट जीवों को कभी तीन कभी चार और कभी पांच क्रियाए लगती हैं । इसी तरह चौवीस दण्डक कहना। वेदना समुद्घात की तरह कषाय समुद्घात भी कहना ।

मारणान्तिक समुद्घात द्वारा जीव जो पुद्गल बाहर निकालता है वे पुद्गल मोटेपन व चौड़ाई में शरीर प्रमाण और लम्बाई में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र एक दिशा में स्पृष्ट एवं आपूरित करते हैं । यह क्षेत्र एक दो तीन अथवा चार समय+ की विग्रह गति से स्पृष्ट एवं आपूरित करता है । मारणान्तिक समुद्घात में जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का काल लगता है । मारणान्तिक समुद्घात से बाहर निकले हुए पुद्गलों से प्राण-भूत जीव और सत्त्व का अभिहनन यावत् प्राण व्यपरोपण

+ विग्रहगति पांच समय की भी सम्भव है किन्तु कदाचित होने से उसकी यहां विवक्षा नहीं की है । [टीका पृष्ठ ५६४]
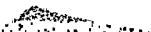
है, छठे समय में मन्थान का, सातवें समय में कपाट का और आठवें समय में दण्ड का संहरण कर केवली भगवान् शरीरस्थ हो जाते हैं।

केवली भगवान् के वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु- इन चार कर्मों की ८५ प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं। नाम कर्म की ८० प्रकृतियां- शुभ नाम कर्म की ४१ और अशुभ नाम कर्म की ३९, वेदनीय की दो - साता वेदनीय और असाता वेदनीय, गोत्र कर्म की दो- उच्च गोत्र और नीच गोत्र और आयु की एक- मनुष्यायु।

पहले समय में केवली भगवान् अशुभ कर्म की ३९ प्रकृतियां, असाता वेदनीय और नीच गोत्र इन ४१ प्रकृतियों की स्थिति के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के अनन्त खण्ड करते हैं और स्थिति और अनुभाग का एक एक खण्ड बाकी रख कर शेष सभी खण्डों का क्षय करते हैं। दूसरे समय में केवली भगवान् शुभ नाम कर्म की ४१, साता वेदनीय और उच्च गोत्र इन ४३ प्रकृतियों की स्थिति के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के अनन्त खण्ड करते हैं। स्थिति का खंड स्थिति में और अनुभाग का खण्ड अनुभाग में मिलाते हैं और एक खण्ड स्थिति का और एक खण्ड अनुभाग का शेष रख कर बाकी सभी खण्ड दूसरे समय में क्षय करते हैं। तीसरे समय में स्थिति के एक खण्ड के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के एक खण्ड के अनन्त खण्ड करते हैं और स्थिति और अनुभाग

प्रवर्ताते हैं । मन योग में सत्य मनयोग और व्यवहार मनयोग प्रवर्ताते हैं। वचन योग में सत्य वचन योग और व्यवहार वचन योग प्रवर्ताते हैं। काय योग प्रवर्ताते हुए आते जाते हैं, उठते बैठते हैं, सोते हैं यावत् प्रतिहारी (पडिहारी)–वापिस लौटाने योग्य पाट पाटला शय्या संस्तारक को वापिस लौटाते हैं।

क्या केवली भगवान् सयोगी यानी योग सहित मोक्ष जाते हैं ? नहीं, केवली भगवान् सयोगी मोक्ष नहीं जाते। वे पहले जघन्य योग वाला पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के मनोयोग से असंख्यात गुण हीन मनोयोग का प्रति समय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में सम्पूर्ण मनोयोग का निरोध करते हैं। इसके बाद जघन्य योग वाले पर्याप्त द्वीन्द्रिय के वचनयोग से असंख्यात गुण हीन वचनयोग का प्रति समय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में सम्पूर्ण वचन योग का निरोध करते हैं। वचनयोग का निरोध करने के बाद प्रथम समय में उत्पन्न जघन्य योग वाले अपर्याप्त सूक्ष्म पनक जीव (निगोद जीव) के काययोग से असंख्यात गुण हीन काययोग का प्रति समय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में सम्पूर्ण रीति से काययोग का निरोध करते हैं। इस प्रकार योगों का निरोध करके अयोगी होते हैं – अयोगी अवस्था को प्राप्त होकर पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारण करने में जितने समय लगते हैं उतने असंख्यात समय प्रमाण अन्तर्मुहूर्त काल को शैलेशी अवस्था को प्राप्त करते हैं एवं वेदनीय आदि कर्म

शुद्धि–पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	५	हो	ही
१२	५	निर्वतनाधिकरणिकी	निवर्तनाधिकरणिकी
१२	७–८	,,	,,
१५	१	एक की	एक जीव की
१६	६	उत्तर से	उत्तर में
२४	६	तोन	तीन
२६	१४	वर्म	कर्म
३०	७	प्रावाश	आकाश
३०	२०	लगतो	लगती
३४	१	म ता	मारता
३४	१७	देता है	देते हैं
३५	१२-१३-१६	श्वासोच्छ्वास	श्वासोच्छ्‌वास
३६	१४	निर्वतनाधिकरणिकी	निवर्तनाधिकरणिकी
३६	१६	प्राद्वपंकी	प्राद्वेपिकी
३८	४	भ्रारम्भ	आरम्भ
४०	१७	संम्वन्धी	सम्बन्धी
४२	१०	सूत्र कृतांग सूत्र	सूत्रकृतांग सूत्र
४३	४	मार, देना	मारदेना
४६	१	परितापनिको	परितापनिकी
४६	५	सामन्तोपनिपातिनी	सामन्तोपनिपातिकी
४६	८	वदारणिकी	वेदारणिकी
४७	४	वम्तु	वास्तु ,

११५	१८	पर्याप्ति पर्याप्त	पर्याप्ति अपर्याप्त
११६	१-२	श्वासोच्छवास	श्वासोच्छ्वास
११९	५	संज्ञी	संज्ञी
१२३	४	+ को	+ के
१३३	३	अदुक्खमसुह च	अदुक्खमसुहं व
१३३	४	माणसरहिय	माणसरहियं
१३४	५	उण्ण	उण्ण
१३६	१, २	औ ।क्रमिकी	औपक्रमिकी
१३६	२	आभ्यु ।गमिकी	आभ्युपगमिकी
१३६	२	दो नों वेदना	दोनों वेदना
१३७	१७	समुद्वत	समुद्घात
१३७	२१	अमाता	असाता
१४०	४	न क	नरक
१४०	१०	वनस्प ।ा	वनस्पति
१४१	३	अ दि	आदि
१४३	६	सद्मुघात	समुद्घात
१४५	८	समुद्वत	समुद्घात
१४६	५	अतीत	अतीत
१४७	११-१२	समुद्घत	समुद्घात
१४७	१२	ममुद्घात	समुद्घात
१५२	४	एअ	एक
१५३	७	जोव	जीव
१५६	१-२	आहा क	आहारक
१५९	१७	असम ।तवें	असङ्ख्यातवें